संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
॥ ऋषि प्रसाद ॥
वर्ष : १२
अंक : १०६
अक्टूबर २००१
अधिक आश्विन मास
विक्रम.सं. २०५८
हिन्दी
आत्मसाक्षात्कार दिवस
१८ अक्तूबर २००१
कर्त्तव्य था सो कर लिया,
करना नहीं कुछ शेष है।
जो जानना था जान लिया,
जानना ना अब लेश है॥
प्राप्तव्य था सो पा लिया,
चलना न आगे पन्थ है।
यात्रा महा पूरी हुई,
अब चित्त मेरा शांत है॥
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १०६
९ अक्टूबर २००१
अधिक आश्विन मास, विक्रम संवत् २०५८ (गुज. २०५७)

सम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : प्रे.खो.मकवाणा
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ एवं शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० एवं रात्रि १०.०० से १०.३०

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गुरु वंदना

मेरे सद्गुरु पावन-पावन, ओजस्वी चेहरा मनभावन।
दर्शन करते नतमस्तक हो, करता है मन शतशत वंदन।
दीनदयाल गुरुदेव नमामि । सुखकर दुःखहर अन्तरयामी।
मंगलमय करुणामय स्वामी । दूर करो हर मेरी खामी।
मेरे मन का तिमिर भगाकर, अलौकिक कर दो मम जीवन।
करता है मन शतशत वंदन । गुरुवर ऐसी लगन लगा दो।
प्रेम की पावन रीत सिखा दो । मोह माया और द्वैत मिटा दो।
करुणाकर कृपा बरसा दो।
ऐसे दो मोहे दिव्य विलोचन, चिदानंद में डूबे जीवन।
धूल जगत की मैंने छानी । मिला न कोई आपका सानी।
नयनों में रहे छवि सुहानी । सुनूँ सदा ही अमृतमय वाणी।
तुझे निहारूँ सदा स्वप्न में, करूँ जागरण में तेरा चिंतन।
करता है मन शतशत वंदन । भक्ति-ज्ञान का पाठ पढ़ाते।
ज्ञान अमृत का पान कराते । जो भी दर्शन करके आते।
सौ सौ बार निज भाग्य सराहते।
तन मन पुलकित होने लगता, 'कमल' सुनें जब ओम का गुँजन।
सद्गुरु मेरे पावन पावन । ओजस्वी चेहरा मनभावन।
दर्शन करते नतमस्तक हो । करता है मन शतशत वंदन।

- रेवा बख्शी 'कमल'
जम्मू (कश्मीर)

*

संयम की बलिहारी

बड़ी है संयम की बलिहारी,
जिसकी अनुपम छवि प्यारी।
संजीदगी स्नेह सौरभ से,
महके जीवन बगिया सारी ॥

अद्भुत ओज, तेज सबल,
सात्त्विक भाव, चित्त निश्चल।
शुद्ध बुद्ध संकल्प अचल,
खिले सद्गुण की फुलवारी ॥

संयम से सुडौल हो काया,
विषय भोग की पड़े न छाया।
चिंता चाह न गम का साया,
वीर पुरुष हो चाहे नारी ॥

तेजस्वी कुशाग्र बुद्धि हो,
पावन तन अंतर शुद्धि हो।
'साक्षी' स्व की बेखुदी हो,
छूटे रोग विलास से भारी ॥

निखरे सुंदर रूप सलोना,
विकार बर्बादी का बिछौना।
तनरत्न यूँ व्यर्थ न खोना,
मिटे संकट विपदा भारी ॥

दीर्घायु, स्वस्थ हो तन मन,
सुख सम्पदा चैन अमन।
झूम उठे, दिले गुलशन,
संयम की महिमा है न्यारी ॥

*

मौन महा सुख पाया...

मौन महा सुख पाया,
अंतर आनंद छलकाया।
मन वाणी का मौन है न्यारा, छल कपट से रहे किनारा।
उर अंतर में हो उजियारा, निजशांति महा रस पाया ॥
मौन से शक्ति का संचार, भक्ति भाव, प्रभु प्रेम अपार।
खुल जाय मन मंदिर द्वार, श्रद्धा दिल दीप जगाया ॥
परचिंतन है तम अज्ञान, भेद भरम है गर्व गुमान।
झूठा लोभ, अहं अभिमान, सद्गुण से चित महकाया ॥
मौन है जागृत सहज समाधि, मल विक्षेप न अहं उपाधि।
विलीन हो तन मन की व्याधि, आत्म अमीरस पाया ॥
मौन परम स्नेह की धार, दूर हों सारे विषय विकार।
धर्मनिष्ठ हो ब्रह्म विचार, वैराग्य, त्याग अपनाया ॥
मौन से जगे विवेक मशाल, करुणामय 'साक्षी' हृदय विशाल।
योगयुक्त, जीवन खुशहाल, समता का सागर लहराया ॥

- जानकी ए. चंदनानी 'साक्षी'
अमदावाद।

अनंत की प्रीति

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

(गतांक का शेष)

अनंत की प्रीति का यात्री भले अभी तुम्हें छोटा दिखे, अकेला दिखे लेकिन वह अकेला नहीं है, वह अनंत से जुड़ा है। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि आपको भी अगर पूरा सुख चाहिए, पूरा आनंद चाहिए, सदा के लिए सब दुःखों का अंत करना है तो आपमें भी प्रीति करने की योग्यता है। उस योग्यता को आप अनंत की तरफ मोड़ने की कृपा करिये, इसलिए मैं बताये जा रहा हूँ।

जहाँ भीड़ होती है, संस्था होती है या आश्रम होता है वहाँ अच्छे-बुरे लोग मिल ही जाते हैं। सज्जन लोग तो उनका फायदा लेते हैं, लेकिन दुष्ट वृत्ति के लोग वहाँ भी अपना काम करते हैं। महावीर के संघ में भी कुछ ऐसे लोग घुस गये थे। वे महावीर के साथ रहने-उठने-बैठने लगे एवं उनके शिष्य-साधु कहलाने लगे। महावीर को पता चला तो उन्होंने ऐसे लोगों को रोका-टोका फिर भी वे भीतर से षड्यंत्र करते रहे और बाहर से महावीर के शिष्य बनने का ढोंग करते रहे। षड्यंत्र करनेवालों का जो मुखिया था उसका नाम था गौशालक। महावीर ने आखिर उसको कहा : ''या तो तुम सुधर जाओ या मेरे संघ से बाहर हो जाओ।''

वह तो बाहर होने को तैयार ही था। उसने पाँच सौ भिक्षुकों को लेकर महावीर के खिलाफ खूब काम किया। भिक्षुक रोटी तो धर्मादे की खाये और रोटी से जो रस बने वह महावीर के खिलाफ लगाये। पाँच सौ भिक्षुकों ने गौशालक के साथ मिलकर महावीर के कुप्रचार का अथवा महावीर की संस्था की, महावीर के प्रभाव की जड़ें काटने का काम किया। गौशालक के साथ पाँच सौ निंदक मिल गये। वे कौन-से नरक में सड़ते होंगे मुझे पता नहीं है लेकिन महावीर को तो लाखों-लाखों जैनी मानते हैं और मेरे श्रोता जानते हैं क्योंकि महावीर के चित्त में अनंत की प्रीति थी।

अनंत की प्रीतिवाले महापुरुष कभी-कभी प्रगट होते हैं और समाज को अनंत की प्रीति की तरफ ले जाते हैं तो अंत की प्रीति में उलझे हुए भोगी लोग, अपने स्वार्थ का ही बोलबाला समझनेवाले लोग ऐसे महापुरुषों को विघ्नरूप समझते हैं। सौराष्ट्र में नरसिंह मेहता हो गये। अनंत की प्रीति के पथिक थे वे।

'अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्रीहरि, झुझवे रूपे अनंत भासे, वृक्षमां बीज तुं अने बीजमां वृक्ष तुं। अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्रीहरि, झुझवे रूपे अनंत भासे।'

उस प्यारे संत ने जो कुछ किया, वह समाज को अनंत का रस देने के लिए किया लेकिन समाज का दुर्भाग्य रहा। वे शरीर से नागर ब्राह्मण थे। उन्हीं की जातिवालों ने, उनमें उनका सगा मामा भी था, कुप्रचार किया। किसी व्यक्ति को सर्प ने काट लिया और वह संत नरसिंह मेहता की शरण में गया। उन्हें दया आ गयी तो हाथ घुमा दिया। उस आदमी का सर्पदंश का प्रभाव क्षीण हुआ और वह ठीक हो गया! तब उनके मामा ने कहा : ''ऐसा तो कुछ नहीं है। यह धूर्त है। मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ।''

नरसिंह मेहता जैसे उच्च कोटि के संत के ऊपर उन्हींके समाजवालों ने कितने लांछन लगाये? फिर भी ऐसे महापुरुष ताने सहते हैं, बदनामियाँ सहते हैं और बदले में अनंत का रस ही देते हैं।

नानकजी ने कितना सहा होगा ? तू नानक होकर देख तो पता चले। गुरु तेगबहादुर ने कितना सहा होगा ? गुरु गोविंदसिंह ने तो दीवार में अपने बच्चे चुनवा दिये। दुष्टों ने कोई कमी नहीं रखी, महापुरुषों को सताने में, फिर भी वे महापुरुष अनंत का प्रेम और ज्ञान ही देते रहे। अनंत करुणा के सागर उन महापुरुषों को बार-बार प्रणाम है।

मेरे गुरुदेव ने निगाहमात्र से मुझे जो दिया है,

वह करोड़ों-करोड़ों जन्मों के माता-पिता और करोड़ों मित्र नहीं दे सके। मैं उन महापुरुष की कैसे प्रशंसा करूँ ? मैं उनका आभार कैसे व्यक्त करूँ ? अनंत की प्रीतिवाले महापुरुष जिस वेश में हों, जहाँ भी हों, चाहे फिर जड़भरत के रूप में हों, चाहे जनक के रूप में हों, चाहे लीलाशाह साँईं के स्वरूप में हों, चाहे किसी भी रूप में हों, उन ब्रह्मज्ञानियों को बार-बार प्रणाम ! अनंत की प्रीति में जगे हुए आत्म-साक्षात्कारी महापुरुषों का जो लाभ लेते हैं वे धनभागी हैं। उनके दैवीकार्य में जो भागीदार होते हैं वे देर-सवेर अनंत के प्यारे पथिक बन जाते हैं।

हे अनंत की प्रीतिवाले संतो ! मेरे साधकों को भी अनंत की प्रीति में सहयोग करना। अंत की प्रीति में तो अनंत जन्म बीत गये। अंत की प्रीति में तो अंत होता चला गया है इन मेरे साधक बच्चों का बच्चियों का, माताओं का। हे मेरे रब ! हे मेरे अनंत की प्रीति के साथी संतो ! आप मेरे साधकों पर भी अपनी कृपा-कटाक्ष करना। ये जैसे हैं, तैसे हैं, हे रब ! तेरे हैं। आप इन्हें अनंत की प्रीति दे देना। ये मेरे भारतवासी अथवा पूरे विश्ववासी जैसे हैं, आपके हैं। आप हमें अनंत की प्रीति का दान करना। अनंत की प्रीति का पैगाम देना।

जरा-सा खाकर खुश हो गये फिर वैसे-के-वैसे। जरा-सा देखकर खुश हो गये फिर वैसे-के-वैसे। जरा-से रुपये-पैसे या मिलियन-बिलियन डॉलर कमाकर खुश हो गये, फिर बेचारे वैसे-के-वैसे। इस अंत की प्रीति में ही मानवजाति का अंत हो रहा है। मानवजाति अनंत की प्रीति करने की योग्यता लेकर आती है और बिखर जाती है।

हे 'गॉड !' हे खुदा ! हे भगवान ! हे आत्मा ! 'गॉड'वाले 'गॉड' को ही कह दो। खुदावाले 'खुदा' को ही कह दो। मुझे कोई आपत्ति नहीं लेकिन मैं सबको प्रार्थना करता हूँ कि उसे सच्चे हृदय से पुकारो। 'अल्लाह ! तू तेरी प्रीति दे।' अगर अल्लाह की प्रीति होगी तो हिंदुओं से नफरत कहाँ रहेगी ? अनंत की प्रीति होगी तो नफरत कहाँ रहेगी ? ये अंतवाली प्रीति ही नफरत पैदा करती है। स्वार्थ ही तो नफरत पैदा करता है। नासमझी ही नफरत पैदा करती है और अनंत की प्रीति पूरी समझ देती है। वह अनंत तो सबका होता है, महापुरुष सभी के होते हैं। जो अनंत की प्रीति का पथिक हो जाता है वह श्रेष्ठ साधक हो जाता है।

अनंत की चीजें भी अनंत जैसा ही व्यवहार करती हैं। गंगाजी उस अनंत परमात्मा की ही तो हैं। गंगाजी कभी नहीं सोचतीं कि : 'गाय को शीतल पानी दूँ और अभागा शेर आये तो उसको जहर जैसा पानी दूँ, पुण्यात्मा को मैं अपने में नहाने दूँ और पापी को बहा ले जाऊँ।' गंगाजी ऐसा नहीं करतीं। अनंत की प्रीतिवाली माँ गंगा भी अनंत जैसा ही व्यवहार करती हैं।

अनंत की प्रीतिवाले भगवान भास्कर, सूर्यनारायण भी कभी ये नहीं सोचते हैं कि : 'हिंदुओं को ही प्रकाश दूँ या मुसलमान को ही प्रकाश दूँ; भारतवासियों को ही प्रकाश दूँ; सूर्याय नमः, रवये नमः, भानवे नमः, खगाय नमः, अर्काय नमः, ॐ श्री सवितृ सूर्यनारायणाय नमः... करनेवालों को ही प्रकाश या बुद्धि दूँ, दूसरों को नहीं दूँ।' ऐसा सूर्यनारायण नहीं सोचते। चाहे देशी हो, चाहे विदेशी हो, चाहे उनको गाली देनेवाला नास्तिक हो फिर भी वे अनंत की प्रीतिवाले अनंत के लिए अपना द्वार खोल बैठे हैं। ऐसे ही धरती माता, जल देवता, वायु देवता और आकाश देवता भी हैं। ये सारे उस देव के ही, अनंत-प्रीति के ही अलग-अलग रूप हैं, उनमें भेदभाव नहीं है।

ज्यों-ज्यों अनंत की प्रीति बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों आपका व्यवहार निखरता जायेगा। राग-द्वेष मिटता जायेगा। फिर आप एक शरीर में, एक कुटुंब में, एक जाति में या एक संप्रदाय में नहीं बँध सकते। जैसे ईश्वर सबका है, सूर्य सबका है, जलतत्त्व सबका है, तेजतत्त्व सबका है, वायुतत्त्व सबका है, ऐसे ही आपकी योग्यताएँ भी सबके लिए हो जायेंगी और सब आपके लिए हों तो उनका सौभाग्य है।

निंदा करके गौशालक जैसे गिने-गिनाये विरोधी हों तो उनका दुर्भाग्य है। संत कबीरजी और नानकजी के कोई निंदक हैं तो उनका दुर्भाग्य है। इससे संत नानक का क्या बिगड़ा ? संत कबीर का क्या बिगड़ा ? जीसस को क्रॉस पर चढ़ानेवाले से जीसस का क्या बिगड़ा ? उनके बिगड़नेवाले शरीर को कीलें लगी थीं। सुकरात को जहर दिया गया फिर भी सुकरात का क्या बिगड़ा ? सुकरात को कष्ट देनेवाले

का विनाश हुआ, सत्यानाश हुआ। क्या-क्या लिखा है ? 'सुखमणि साहिब में' देख लो :

संत का निंदकु महा हतियारा, संत का निंदकु परमेसुरि मारा।
संत के दोखी की पुजै न आस, संत का दोखी उठि चलै निरासा।
संत का दोखी बिगड रूपु होइ जाइ, संत के दोखी कउ दरगह मिलै सजाइ।

'श्रीरामचरितमानस' में भी आता है :

हरि गुरु निंदा सुनहिं जे काना, होइ पाप गौघात समाना।

कोई हरि की और गुरु की निंदा सुने तो सुननेवाले को गौहत्या का पाप होता है और निंदा करनेवाले को तो हजार-हजार जन्मों तक मेढक की योनियों में और कई नीच योनियों में जाना पड़ता है।

हरि गुरु निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई।

हरि और गुरु की निंदा करनेवाला मेढक होता है।

निंदा कौन करते हैं ? अंत की प्रीतिवाले करते हैं। अहंकार की प्रीतिवाले करते हैं, भोगों की प्रीतिवाले करते हैं। अनंत की प्रीतिवाले क्यों निंदा करेंगे ? क्यों विरोध करेंगे ?

अनंत की प्रीति के पथिकों को सावधान होकर चलना चाहिए। निंदा नहीं करना चाहिए लेकिन अशुभ का विरोध करने का बल अवश्य रखना चाहिए। अनंत के पथ का साधक ऐसा न जिये कि कोई उसे गुमराह कर दे। मीरा अनंत की प्रीति के रास्ते चली थी। सगे-संबंधी उनकी साधना में विघ्न डालते थे तब मीरा ने संत तुलसीदासजी को पत्र लिखा :

स्वस्तिश्री तुलसी, गुणभूषण, दूषण हरण गुसाँई।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥
मेरे मात तात सम तुम हो, हरिभक्तन सुखदाई।
मोकों कहा उचित करिबो, अब सो लिखिये समुझाई॥

मेवाड़ से मीराबाई का यह पत्र लेकर सुखपाल नामक ब्राह्मण आया था। उनकी चिट्ठी पढ़कर तुलसीदासजी ने यह पद बनाकर उत्तर दिया कि सब छोड़कर भगवान् का भजन करना ही उत्तम है :

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम स्नेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज वनितन्हि, भये मुद मंगलकारी॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो॥

अनंत की प्रीति करो। दिन में दो-चार घण्टा एकांत-मौन में साधना करो। प्रभु की प्रीति के लिए भजन करो, प्रभु की प्रीति के लिए सेवा करो फिर देखो। वाहवाही के लिए, अखबार में नाम आये इसलिए तो बहुत लोग सेवाकार्य करके दिखाते हैं, लेकिन नाम की फिकर न करो। अन्तर्यामी ईश्वर सब जानते हैं। उसकी प्रीति के लिए गरीब-गुरबे की सेवा करो। दाता, दयालु या सेठ होकर नहीं, नेता होकर नहीं, गरीब का होकर गरीब की सेवा करो। दुखियारे का साथी होकर उसकी सेवा करो क्योंकि दुखियारे में भी वही बैठा है। माँ की सेवा करो लेकिन दया-धर्म से उनकी सेवा मत करो। 'माँ में भी मेरा अनंत है, पिता में भी मेरा अनंत है, गुरु में भी मेरा अनंत है। गरीब में भी मेरा अनंत है।' इसी प्रकार की भावना से अगर उनकी सेवा करते हो तो तुम्हारी सेवा अनंत तुरंत स्वीकार लेता है, तुरंत हृदय में प्रेरणा देता है और सिंह जैसा बल देता है। मुझे तो कई बार इसके अनुभव हुए हैं। जो भी थोड़ी-बहुत सेवा होती तो भीतर से जो भाव उभरता उसे तो वह जाने और मैं जानूँ। क्या बताऊँ आपको... ??

कीड़ी के पग नेवर वागे सो भी साहब सुनत है।

तुम छुपकर पाप करते हो तो हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं। छुपकर सेवाकार्य करते हो तो वे हृदयेश्वर बल और आनंद बढ़ा देते हैं।

परमात्मप्राप्ति के आगे, अनंत की प्रीति के आगे यह भी एक हिस्सा है। एक-एक डाली, एक-एक टहनी क्या, तुम तो मूल को ही पहचानकर मूल में ही आराम पा लो, बस।

हमने तो गुरुदेव की मुलाकात के पहले बहुत किस्म के पापड़ बेले लेकिन हमारे गुरुदेव ने हमको बहुत किस्म के पापड़ों की बजाय एक ही मूल की तरफ लाकर बड़ी कृपा कर दी और हमको बहुत-बहुत दे डाला। हम उनका वर्णन नहीं कर सकते, उपकार नहीं भूल सकते। उन ब्रह्मवेत्ता को, उन सद्गुरु को फिर-फिर से मेरे प्रणाम हैं।

पूरा प्रभु आराधिया, पूरा जा का नाम,
नानक पूरा पाइये, पूरे के गुणगान।

कुछ साधन-भजन हो जाय तो फिर यह नहीं

सोचना कि : 'देखें, अपना संकल्पबल... यह हो जाय, वह हो जाय।' कभी-कबार कुछ हो भी जाय तो फिर शेखी मत बघारना : 'देखो, मैंने बोला तो हो गया न।' ऐसा करते-करते अनंत की प्रीति के रास्ते से कुछ मिला तो फिर अंत में प्रीति करके आप नष्ट नहीं करना। आप सँभल-सँभलकर कदम रखना, अपने दिल की रक्षा करना। जैसे, गर्भिणी स्त्री गर्भ की रक्षा के लिए सँभल-सँभलकर कदम रखती है,वैसे ही आप भी सँभल-सँभलकर चलना। उसको तो गर्भ से हाड़-मांस के बच्चे को जन्म देना है लेकिन आपको तो दिल में दिलबर को प्रगट करना है।

जो मंत्रदीक्षा लेते हैं, ध्यान-योग साधना शिविरों में आ जाते हैं या फिर रोज एक-दो घण्टा साधन-भजन करते हैं उनके जीवन में भी बहुत कुछ चमत्कार शुरू हो जाते हैं। जो साहब डाँटता था, रोकता था, टोकता था, वह आदर करने लग जायेगा। कल्पना भी नहीं की होगी, ऐसा प्रमोशन होने लग जायेगा। कल्पना भी नहीं की होगी ऐसे तरीके स्फुरित होंगे और व्यापार में माल खरीदे-बेचेंगे तो खूब पैसे मिलने लगेंगे।

लेकिन ये सब अनंत की प्रीति के खिलौने हैं। इसमें सत्यबुद्धि करके आप रुकना मत। आप तो उसीकी तरफ चलना। फिर चलोगे तो कभी-कभार विघ्न भी आयेंगे। अपने पराये होने लगेंगे, रोकने-टोकनेवाले होने लगेंगे। उनसे भी आप रुकोगे नहीं तो फिर ऋद्धि-सिद्धि हाजिर होने लगेंगी। उनमें भी नहीं उलझोगे तो वह स्वयं प्रगट हो जायेगा और कहेगा : 'ले, तू और मैं एक हूँ यार !'

कहीं रास्ते के मयखानों में रुक मत जाना, हलवाई की दुकानों में रुक मत जाना, कहीं सुख-सुविधाओं में रुक मत जाना और कपट और असुविधा में भी रुक मत जाना। इस शिविर के लिए आप चाहे जहाँ से भी चले तो कहीं उतार आये, कहीं चढ़ाव आये, अनुकूलता आयी, प्रतिकूलता आयी, यात्रा करते-करते यहाँ पहुँचे। ऐसे ही अनंत (शाश्वत) की प्रीति के लिए यात्रा करते-करते अनंत तक आप पहुँच सकते हैं। कोई कठिन नहीं है। कठिन यही है कि अंत (नश्वर) की प्रीति की जो आदत है वह कठिनाई पैदा कर देती है।

अनंत की प्रीति के पथिकों को अवांछित तत्त्वों से, दुष्टता से अथवा गड़बड़ियों से लोहा लेने का सामर्थ्य भी रखना चाहिए। ऐसा नहीं कि : 'चलो, हम तो अनंत की प्रीतिवाले हैं, सहते जाओ। कुचले जाओ, मरते जाओ, दबते जाओ।' नहीं, नहीं। असत्य से लोहा लेने का भी बल रखना चाहिए। उसका मतलब यह भी नहीं कि घर जायें और माँ ने या पत्नी ने कुछ कह दिया तो चलो, उनसे लोहा लो। यह नहीं।

ज्यों-ज्यों आप ध्यान-भजन करेंगे त्यों-त्यों अंतःप्रेरणा होती जायेगी। अंतःकरण शुद्ध होता जायेगा और शुद्ध अंतःकरण में ही अनंत की प्रीति प्रकट होगी...

*

विवेक जागृत रखो

(गीतामर्मज्ञ पूज्यश्री गीताज्ञान की पावन गंगा बहाते हुए अपने प्यारे श्रोताओं को कितना सहज में ज्ञानामृत देते हैं उसका एक साक्ष्य आपके समक्ष प्रस्तुत है ।)

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

'हे कुन्तीपुत्र ! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख को देनेवाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं, इसलिए हे भारत ! उनको तू सहन कर ।' (गीता : २.१४)

तू भूख-प्यास, मान-अपमान, सुख-दुःख को सहन कर, नहीं सहेगा तो देह में मन लगा रहेगा और सह लेगा तो मन की देह से कुछ पृथकता हो सकेगी । मन परमात्मा में लगाना है तो देह की सुविधा-असुविधा की चिंता छोड़ । जन्म-मरण के दुःखों से दूर होना है तो देह में से ममता हटा ।

वे लोग सचमुच अभागे हैं जो सारा दिन शरीर को सजाते रहते हैं, आईने में देखते रहते हैं सुन्दरता विकसित करने के लिए सैलूनों में, ब्यूटी पार्लरों में जाया करते हैं । ऐसे देहाध्यासी लोगों को एक क्षण में सुख, दूसरे क्षण में दुःख हो जाता है । एक क्षण में हँसना, दूसरे क्षण में रोना पड़ता है । ऐसा करते-करते वे पूरा समय गँवा देते हैं । बाद में तिर्यक-पशु-पक्षियों की योनि पाते हैं और भटकते रहते हैं, वे सुख-दुःख सहते हैं फिर भी उनके दुःखों का अंत नहीं आता है ।

हे रामजी ! इस जीव ने कौन-से दुःख नहीं सहे हैं । संसार में जो भी दुःख हैं वे सब मनुष्य ने सहन किये हैं । कभी तो वह बैल होकर बोझा उठाता है, कभी हाथी होकर जंगलों में भटकता है, कभी हिरण बनता है तो किसीका शिकार हो जाता है, कभी शिकारी होकर भागता है तो कभी शिकार होकर भागता है... ।

यह जीव जन्म-से-जन्मांतर तक भागता आया है । चौरासी लाख योनियों से भागता-भागता इस मनुष्य देह में आया है । अब यदि मनुष्य देह में भी नहीं चेतेगा तो फिर न जाने कितने-कितने जन्मों में भागना पड़ेगा । इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं : 'हे अर्जुन ! तू तितिक्षा सह । सत्पुरुषों का संग कर ।'

सत्पुरुषों के पास जाने में कोई कष्ट आता है तो तू सहन कर ले, तपस्या हो जायेगी । परमात्मा का ध्यान करने में संसार का कोई पदार्थ, कोई चीज चली जाय तो चिंता मत कर । एक दिन शरीर भी मिट्टी में मिल जायेगा । सच पूछो तो जो परमात्मा का ध्यान करते हैं, संसार की चीजें तो उनके पीछे-पीछे घूमती रहती हैं और जो परमात्मा को छोड़कर संसार के पीछे घूमते हैं उनके पास संसार का सुख टिकता ही नहीं । मान लो, संसार की कोई चीज छूट जाय, संसार का कोई मित्र नाराज भी हो जाय, संसार का कोई पदार्थ चला भी जाय तो भगवद्भक्ति के रास्ते में उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए ।

शीत-उष्ण, सुख-दुःख आते हैं और जाते हैं । ये आगमापायी और अनित्य हैं । जिस देह को शीत-उष्ण लगता है, जिस देह को भूख-प्यास लगती है, वह देह भी शाश्वत नहीं है तो उस देह पर आनेवाले सुख-दुःख सदा कैसे रहेंगे ? इसलिए बुद्धिमान को चाहिए कि अपना अधिक-से-अधिक समय मौन, एकांत, ध्यान में, संतों के सान्निध्य में अथवा निःस्वार्थ होकर समाज व संतों के बीच सेतु बनने के दैवीकार्य में गुजारें । लोगों से कम-से-कम परिचय करें, कम-से-कम बोलें, कम-से-कम सोयें, शरीर को टिकाने के लिए ही खायें और बार-बार विचार करें कि: 'मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आया हूँ ? आखिर मैं कहाँ जाऊँगा ? संसार की सब सुविधायें मिल जायें, आखिर क्या ?'

एक बात यदि आप याद रखोगे तो कल्याण हो जायेगा । प्रतिदिन अपने से पूछो... कुछ भी काम

करो, काम करने के पहले और काम करने के बाद अपने-आपसे पूछो कि : **'आखिर यह सब कब तक ?'** बस, इतना ही याद रखोगे तो बहुत बढ़िया होगा। दिन में बार-बार पूछो कि : **'आखिर क्या ? आखिर यह सब कब तक ? आखिर इन सबका क्या ?'** बार-बार ऐसा सोचोगे तो विवेक जगेगा। विवेक जगने से वैराग्य आता है। जिसकी बुद्धि में वैराग्यरूपी फूल खिला है, उसके जीवन में षट्संपत्तिरूपी भँवरे आने लगते हैं।

जब तक विवेक नहीं है तब तक मन चंचल है। जरा-सा विवेक जागृत रखो तो मन शांत हो जायेगा। विवेक प्रगाढ़ होगा तो वैराग्य टिकेगा। वैराग्य टिकेगा तो शांति भी टिकेगी, वैराग्य टिकेगा तो यश भी टिकेगा, वैराग्य टिकेगा तो मान भी टिकेगा, वैराग्य टिकेगा तो अर्थ भी टिकेगा और वैराग्य गया तो सब गया ! वैराग्य का बाप है विवेक। जगत की नश्वरता का विवेक करो।

क्या करिये क्या जोड़िये, थोड़े जीवन काज।
छोड़ी-छोड़ी सब जात हैं देह, गेह, धन, राज॥

कोई रोता-बिलखता मरता है तो कोई एकाएक मरता है, कोई बीमार होकर मरता है तो कोई तंदुरुस्त ही मर जाता है, लेकिन सच्चा मरना तो उसीका है जो परमात्मा के ध्यान में मर जाय। धन्य तो उसीका जीना है जो परमात्मा में डूबकर परमात्ममय हो जाता है। जिसका मन परमात्मा के ध्यान में डूबा है, जिसका मन परमात्मा की मस्ती में मरा है उसको काल क्या मारेगा ? जो परमात्मा में मर रहा है उसको दुनिया क्या मारेगी ? वह तो परमात्मा में मरकर परमात्ममय हो गया है।

मूर्ख आदमी संसार में खपकर संसारी हो जाते हैं, जड़वादी जड़ चीजों के पीछे जड़ बन जाते हैं, भोगवादी भोगों में खपकर भोगी बन जाते हैं, लेकिन कोई-कोई गुरुमुख, कोई-कोई हरि का प्यारा है जो विवेक को सजाग रखकर अपने मन को परमात्मा में लगाता है, सत्पुरुषों की संगति में लगाता है, प्रणव के जाप में लगाता है।

बहिरंग जप करते-करते फिर मानसिक जप होता है तो मन के कल्मष दूर होते हैं, तन के पाप नाश होते हैं। शरीर के दोष और मन की चंचलता कम होती है। जप से तन और मन के दोष दूर हो जाते हैं तो फिर ध्यान लगना स्वाभाविक शुरू हो जाता है और आदमी अपने मूलस्वरूप में प्रगट होने लगता है।

आपका मूलस्वरूप है आत्मा। आपका मूलस्वरूप है चैतन्य सच्चिदानंद परमात्मा। आपका मूलस्वरूप है अजन्मा, आपका मूलस्वरूप है अविनाशी, आपका मूलस्वरूप है त्रिकालाबाधित। आप धीरे-धीरे अपने मूलस्वरूप में प्रगट होने लगेंगे। अपने मूलस्वरूप की एक बार थोड़ी-सी भी झाँकी आ जाय फिर नागकन्याओं का सुख भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकेगा, अप्सराओं का सुख भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकेगा, देवों, यक्षों और किन्नरों का सुख भी तुम्हें आकर्षित नहीं कर सकेगा तो संसार के तुच्छ सुख तुम्हें क्या बाँध सकेंगे ?

इसीलिए विवेक को सदैव जागृत रखें। मन को समझायें : **'आखिर कब तक ?** पुत्र की चिंता भी क्यों और कब तक करेगा ? अगले जन्म में तेरे कितने पुत्र-पुत्री-परिवार हो गये, कितनी पत्नियाँ हो गयीं, तू किस-किसकी चिंता करेगा ?'

जिसने अनुराग का दान दिया उससे कण माँग लजाता नहीं...

जिसने तेरी आँखों को देखने की सत्ता दी, जिसने तेरे पैरों को पसारने का सामर्थ्य दिया, जिसने तेरे होठों को हिलने की सत्ता दी, जिसने तेरे मन के संकल्पों को स्फुरने की सत्ता दी, जिसने तेरी बुद्धि को निर्णय करने की सत्ता दी, जिसने तुझे इतना-इतना दान दिया उसको भूलकर तू कहाँ भटकता है ?

इन्द्रियों के सुख क्षणिक हैं। कोई आँख के सुख में फँसा है, कोई जीभ के सुख में फँसा है, कोई नाक के सुख में फँसा है, कोई कान के सुख में फँसा है और कोई त्वचा के सुख में फँसा है। जिस सुखस्वरूप परमात्मा की सत्ता से ये इन्द्रियसुख भासते हैं, उस सुखस्वरूप परमात्म-चेतना का अनुभव करो। तुम तुच्छ इन्द्रियसुख के पीछे अपना जीवन बरबाद न करो।

जिसने अनुराग का दान दिया उससे कण माँग लजाता नहीं।
अपनापन भूल समाधि लगा, यह पिउ का बियोग सुहाता नहीं।
नभ देख पयोधर शाम ढले, क्यों मिट उसमें मिल जाता नहीं।
अब सीख ले मौन का मंत्र नया, ये पीउ का बियोग सुहाता नहीं।
चुगता है चकोर अंगार, फरियाद किसीको सुनाता नहीं।

अरे ! चकोर पक्षी उस पिया के प्रेम में अंगार

चुग जाता है फिर भी किसीसे शिकायत नहीं करता और 'हे मन ! तू सुख-दुःख की शिकायत करता है ? प्रतिकूलता में कायरों जैसा भागता है ? जरा-सा अपमान हो जाता है तो तू कमजोर हो जाता है ? प्रभु को छोड़ देता है ? जरा-सा मान मिलता है तो प्रभु को छोड़ देता है ?

आदमी की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है, आदमी का आखिरी-में-आखिरी दुर्भाग्य यह है कि **वह पहला ही कुठाराघात अपने साधन-भजन और विवेक पर करता है।** संसार का कोई काम आ गया तो भजन छोड़ दिया, संध्या-वंदन छोड़ दिया। आदमी पहली कैंची चलाता है - सत्संग पर, ध्यान-भजन पर।

शास्त्र कहते हैं : **शतंविहाय भोक्तव्यम् ...** सौ काम छोड़कर समय से भोजन कर लेना चाहिए।

...सहस्त्रम् स्नानम् आचरेत् ।

हजार काम छोड़कर स्नान कर लें। स्नान से सत्त्वगुण बढ़ता है। सत्त्वगुण से विवेक पुष्ट होता है। सत्त्वगुण बढ़ने से मनोबल बढ़ता है, संकल्प सत्य होने लगता है, सत्त्वगुण अत्यधिक होने से ऋद्धि-सिद्धि हाजिर हो जाती है।

सूर्योदय के पहले स्नान करने से बुद्धि पवित्र होती है, ध्यान-भजन में भी बरकत आती है और संसार के व्यवहार में, कमायी में भी बरकत आती है। पहले के जमाने में लोग चार बजे उठकर स्नानादि करके संध्या-वंदन करते थे। तब परिवार में एक व्यक्ति कमाता था फिर भी सुखी जीवन गुजारते थे और अभी पति और पत्नी दोनों कमाते हैं फिर भी बरकत नहीं होती और जरा-जरा बात में खिन्न हो जाते हैं...

लक्ष्यम् विहाय दातव्यम् ...

लाख काम छोड़कर भी दान करने का मौका आ जाय तो दान कर दें। धन का दान करें, धन न हो तो किसीको आश्वासन दें, प्यासे को पानी का प्याला ही दान करें लेकिन कुछ-न-कुछ दान करें क्योंकि शरीर नाशवान है। मौत कब आ जाय निश्चित नहीं है। इसलिए शरीर से कुछ देना सीखें, ताकि एक बार प्रभु के लिए शरीर भी देना पड़े तो दे सकें। शरीर देकर भी यदि परमात्मा मिलता है तो सौदा सस्ता है। नहीं तो शरीर को तो श्मशान में लकड़ियाँ जला देंगी। दान भी प्रभु को पाने की प्रक्रिया का एक अंग है।

...कोटि त्यक्त्वा हरिभजेत् । करोड़ काम छोड़कर हरि का स्मरण करो, हरि का ध्यान करो।

आज आदमी का सोचने का तरीका इतना गलत हो गया है कि घर में कोई मेहमान आ जाय, संसार में कुछ काम आ जाय या ऑफिस के साहब को रिझाना पड़े तो ध्यान-भजन को छोड़ देता है। अरे ! आत्म-साहब को छोड़कर बाहर के साहबों को रिझाने जायेगा तो साहब राजी नहीं होंगे, तेरा शोषण होगा और तू आत्म-साहब के रास्ते चलेगा तो साहबों के भी साहब (आत्म-साहब) उस साहब का चित्त बदल देंगे। जो काम हजारों-लाखों खर्च करके नहीं होता वह तेरे ध्यान-भजन के प्रभाव से अपने-आप भी हो सकता है।

कबीरा यह जग आयके, बहुत से कीने मीत।
जिन दिल बाँधा एक से, वे सोये निश्चिंत ॥

कोई मित्र से मिलने के लिए सत्संग छोड़ देते हैं, कोई धन कमाने के लिए सत्संग छोड़ देते हैं, कोई नोटिस को ठीक करने के लिए सत्संग छोड़ देते हैं। जब संसार में प्रतिकूलता आ जाती है या अधिक अनुकूलता आ जाती है तो व्यक्ति पहला खून करता है, साधन-भजन का। पहली गोली मारता है ध्यान-भजन के समय को। जो ध्यान-भजन का समय काट देता है उसको काल भी उठा लेता है।

जो ध्यान-भजन नहीं करता उसको भीतर का रस नहीं आता। जिसको भीतर का रस नहीं आता, वह बाहर के रसों में अपना कीमती समय गँवा देता है और बाहर से सजा-धजा तो दिखता है लेकिन भीतर से खोखला हो जाता है। आखिर भगवान की कृपा, संतों की कृपा से कुछ काम तो होता है लेकिन अपने कर्म इतने तीव्र होते हैं कि कुछ तो भोगना ही पड़ता है। इसलिए शास्त्रकार कहते हैं :

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्त्रं स्नानं आचरेत् ।
लक्ष्यं विहाय दातव्यं कोटि त्यक्त्वा हरिभजेत् ॥

'सौ काम छोड़कर भोजन करो। हजार काम छोड़कर स्नान करो। लाख काम छोड़कर दान करो और करोड़ काम छोड़कर हरि का स्मरण करो, हरि का ध्यान करो।' हरि के ध्यान से तुम स्वयं हरिमय हो जाओगे।

*

निर्वासनिक पुरुष की महिमा

('चेटीचंड २००१ शिविर में श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' जैसे महान वेदांत ग्रंथ को सहज सरल भाषा में समझाते हुए पूज्यश्री कह रहे हैं :)

''हिमालय पर्वत में प्राप्त हुआ तपस्वी भी ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुष का मन शीतल होता है।''

हिमालय पर्वत में शीतलता तो होती है लेकिन बर्फ की शीतलता शरीर को ठण्डक देती है जबकि निर्वासनिक पुरुष की शीतलता तो हृदय को शीतल बनाती है, सुखमय बना देती है। निर्वासनिक पुरुष की बड़ी भारी महिमा है।

परमात्मा में शांत हुए निर्वासनिक पुरुष के लिए त्रिलोकी का वैभव भी तुच्छ है, सुमेरू पर्वत भी छोटे-से ठूँठे जैसा है, सारी पृथ्वी उनके लिए गोपद के समान है। उनको परमात्मा पराये नहीं हैं, परे नहीं हैं, भविष्य में मिलेंगे ऐसा नहीं है। वे आत्मा को ही परमात्मस्वरूप में ज्यों-का-त्यों जानते हैं।

वासनाएँ ही जीव को तुच्छ बना देती हैं। जितनी वासनाएँ ज्यादा उतना वह लघु है, जितनी वासनाएँ कम उतना वह बड़ा है और निर्वासनिक तो साक्षात् नारायणस्वरूप होता है। निर्वासनिक पुरुष के निकट मनौती मानने से भी प्रकृति मदद कर देती है। निर्वासनिक पुरुष के वचन सुनने से भी चित्त निर्मल होता है।

कबीरा मन निर्मल भयो, जैसे गंगा नीर।
पीछे-पीछे हरि फिरे, कहत कबीर-कबीर ॥

वासना मल है, निर्वासनिकता निर्मलता है। कितनी वासनाएँ करोगे ? जिनके पास करोड़ों रुपये थे वे भी खाली हाथ गये तो तुम कितना सँभालोगे ? 'मेरी पत्नी, मेरी दुकान, मेरा मकान...' यह कब तक करोगे ? ऊपर-ऊपर से अपना कर्तव्य करो लेकिन भीतर से निर्वासनिक नारायण में, परमात्मा में विश्रांति पाओ। बाह्य कर्तव्य में कायर न बनो, पलायनवादी न बनो लेकिन भीतर अपने निर्वासनिक तत्त्व में सराबोर रहो।

श्रीवशिष्ठजी महाराज कहते हैं : **'हे रामजी ! सूरमा होकर युद्ध करो लेकिन भीतर से निर्वासनिक रहो।'**

जो निर्वासनिक हो जाता है उसके सारे संकटों का, सारे दुःखों का अंत हो जाता है। जो वासनावान है वह बड़े कष्टों को पाता है। जहाँ निर्वासनिकता है वहाँ विकारों की दाल नहीं गलती और जहाँ विकार हैं वहाँ निर्वासनिकता का सुख, भगवत्सुख प्रगट नहीं हो सकता।

पूनम की रात हो, सोने की खाट हो, रेशम की निवार हो, केवड़े का इत्र छिटका हुआ हो, मोगरे एवं गुलाब के फूलों की शैय्या हो, ललना आकर चरणचंपी करे, अप्सरा आकर गले लगे फिर भी वह सुख नहीं मिलता, जो निर्वासनिक पुरुष के संग से मिलता है। इसलिए सत्संग की बड़ी भारी महिमा है।

भगवन्नाम का जप करते रहें, भगवद्ध्यान करते रहें, सत्संग-स्थल पर चुपचाप बैठे रहें तो भी बहुत लाभ होता है।

आत्मलाभात् परं लाभं न विद्यते। आत्मसुखात् परं सुखं न विद्यते। 'आत्मलाभ से बढ़कर कोई लाभ नहीं है। आत्मसुख से बढ़कर

कोई सुख नहीं है।' और यह मिलता है सत्संग से।

पुरुषार्थ यही है कि बाह्य प्रवृत्ति अधिक न करें, वरन् थोड़े अंतर्मुख हों। मौन रहने का अभ्यास करें, श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण का बार-बार विचार करें एवं आत्मशांति में डूबें, अंतर्मुख होने का प्रयास करें। नहीं तो कइयों का जीवन व्यर्थ की आपाधापी में तबाह हो गया। अंत में सब यहीं धरा रह जाता है।

त्रिकाल संध्या का उद्देश्य यही है कि जीव अपने आनंदस्वरूप ईश्वर से एकाकार हो। दुःख-रहित जीवन हो, पापरहित जीवन हो, शोकरहित जीवन हो, भयरहित जीवन हो, चिंतारहित जीवन हो। संध्या तो करेंगे नहीं और इधर-से-उधर भटकते रहेंगे। फिर बुद्धि मारी जायेगी और लाचार जीवन हो जायेगा...

बिनु रघुवीर पद जिय की जरनि न जाई।

उस परमात्मसुख को पाये बिना, परमात्म-पद को पाये बिना, निर्वासनिक नारायण में विश्रांति पाये बिना हृदय की तपन नहीं मिटती... शोक नहीं मिटता.. मोह नहीं मिटता... चिन्ताएँ नहीं मिटती... भय नहीं मिटता।

अगर भय, चिंता, शोक, मोह, राग, द्वेष इत्यादि से छुटकारा पाना है तो यत्नतः निर्वासनिक पुरुषों का संग करें, मौन रखें, सत्शास्त्रों का पठन-मनन करें एवं जप-ध्यान करें। निर्वासनिक नारायण-तत्त्व में विश्रांति पाने में यह सहायक साधन हैं।

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

करुणासागर की करुणा...

[पूज्य बापूजी का आत्म-साक्षात्कार दिवस : १८ अक्टूबर २००१]

(जीवन में सद्गुरु की कितनी आवश्यकता है इस विषय पर चेटीचंड २००१ के ध्यान-योग शिविर में शिविरार्थियों को समझाते हुए पूज्य बापूजी कह रहे हैं :)

प्रसादे सर्वदुःखानां... परमात्मशांति के प्रसाद से सारे दुःखों का अंत होता है और बुद्धि परमात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होती है।

जीव बेचारा इंद्रियों एवं मन से जुड़कर संसार में सुखी होने को भटकता है लेकिन सुख की जगह पर दुःख और जिम्मेदारियाँ, क्लेश और बीमारियाँ मिलती हैं। धर्मयुक्त जीवन होता है तो धर्म संयम सिखाता है, वासनाओं को नियंत्रित करता है लेकिन वासनावाला अनुकूल में राग और प्रतिकूल में द्वेष करने लगता है। मनुष्य बेचारा राग-द्वेष में फँस जाता है।

अनुकूल परिस्थितियों से उत्पन्न राग और प्रतिकूल परिस्थितियों से उत्पन्न द्वेष मानव की शांति का, माधुर्य का, समझ का अपहरण कर लेता है इसलिए ईश्वरोपासना की आवश्यकता पड़ती है। ईश्वर की उपासना किये बिना राग-द्वेष मिटता नहीं है। ईश्वर की उपासना से राग-द्वेष शिथिल होता है, धर्म का अनुष्ठान करने से वासना नियंत्रित होती है। इससे सज्जनता एवं सद्गुण आने लगते हैं। यदि सद्गुण आते हैं तो अहंरूपी असुर घुस जाता है : 'मैं सद्गुणी हूँ... मैं संयमी हूँ... मैं धर्मात्मा हूँ... मैं भक्त हूँ... मैं मक्का गया, मैं काशी गया...' और यह अहं आकर सब चुरा लेता है।

इस अहं को हटाने के लिए अहं की खोज करें :

'मैं-मैं कौन करता है ?' **मन तू ज्योतिस्वरूप, अपना मूल पिछान।** तू तो साक्षीस्वरूप परमात्मा का अविभाज्य अंग है लेकिन जो इसको नहीं जानने देती है वह है - अविद्या महारानी।

अविद्या के कारण जीव मन के गुणों को अपना गुण मानता है, चित्त के गुण-दोषों को अपना गुण-दोष मानता है और अहं सजाता है। फिर मन के अनुकूल होता है तो सुख होता है, मन के प्रतिकूल होता है तो दुःख होता है। इसीसे भिड़ते-भिड़ते जीव बेचारा अपना जीवन खत्म कर देता है।

शास्त्र कहते हैं : **तस्मात् गुरु अभिमुखात् गच्छेत्।** गुरु के अभिमुख जाओ। अन्यथा ये माया और अहं तुम्हें कहीं-न-कहीं भटका देंगे। गुरु भी कैसे हों ? श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ... जिन्हें शास्त्रों का ज्ञान हो, अविद्या को भगाने का एवं राग-द्वेष को मिटाने का जिन्हें अनुभव हो, जो ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा में प्रतिष्ठित हों, ऐसे गुरु की खोज करें।

तुलसीदासजी कहते हैं :

तन सुकाय पिंजर कियो धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटे न वासना बिना विचारे ज्ञान ॥

शरीर को सुखाकर पिंजर जैसा बना लें, दिनरात ध्यान जैसा ऊँचा साधन करे, फिर भी ज्ञान का विचार किये बिना अविद्या-वासना मिटती नहीं है।

जब ज्ञान का विचार मिलता है, तब अविद्या बोलती है : 'ये बाद में कर लेंगे अभी तो जरा पिता को सँभाल लूँ, जरा पत्नी को सँभाल लूँ, जरा परिवार को सँभाल लूँ... फिर आराम से भजन करूँगा।' ऐसा करते-करते जीव उलझ जाता है।

अपने कर्तव्य का जब तक सूक्ष्म अभिमान है, तब तक परमात्मा की पूर्णता का अनुभव नहीं होगा। साधन तो करें लेकिन हमारे साधन के बल से विश्वनियंता पकड़ में आ जाय- ये संभव नहीं है। साधन करते-करते यह महसूस, हो कि मेरा करा-कराया अल्प है, ईश्वर की कृपा ही सर्वस्व है। इससे ईश्वर की महती कृपा जीव को मिलती है।

फिर चाहे ईश्वर को निराकार मानो, चाहे साकार मानो, चाहे बंसीधर मानो, चाहे धनुषधारी मानो, चाहे संबसदाशिव मानो, चाहे पाण्डुरंग मानो, चाहे गजानन के रूप में मानो, चाहे प्राणिमात्र के आधारस्वरूप निर्गुण निराकार आत्मरूप में मानो लेकिन ईश्वर की शरणागति स्वीकार करने से ईश्वरकृपा अवश्य मिलती है।

शरीर से जो कुछ करो ईश्वर की प्रसन्नता के लिए, मन से जो कुछ करो ईश्वर की प्रसन्नता के लिए, बुद्धि से जो कुछ सोचो उसीके विषय में। 'अहं, अहं' नहीं, आत्मरामी बनो।

संसार का सहज कार्य भी मार्गदर्शक के बिना नहीं होता। कबीरजी कहते हैं :

सहजो कारज संसार को गुरु बिन होत नाहीं।
हरि तो गुरु बिन क्या मिले समझ ले मनमाहीं ॥

फिर यह तो अनजाना देश है और अनमिला पिया है। यहाँ मन, बुद्धि, अहं अपना कोई-न-कोई षड्यंत्र करके साधक को उलझा देते हैं।

ऐसा नहीं कि लोगों में श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा तो है। साधन नहीं करते ऐसी बात भी नहीं है। गुरु नहीं हैं ऐसी बात है क्या ? नहीं, गुरु भी हैं। लेकिन गुरु की सूक्ष्मता का फायदा, साधना की सूक्ष्मता का फायदा, श्रद्धा की सूक्ष्मता का फायदा कोई-कोई विरले ही ले पाते हैं, आखिरी तक निभा पाते हैं। स्थूल मतिवाले तो अपनी तराजू से तोलेंगे : 'पहले ऐसा था, अब ऐसा है... इतना लाभ हुआ, इतना नहीं हुआ...।'

इसलिए बहुत-बहुत साहस और समझ की आवश्यकता है। नानकजी ने कहा है :

घर विच आनंद रहया भरपूर, मनमुख स्वाद न पाया।

अपने मन से निर्णय कर लिया कि मैं यहाँ जाकर भजन करूँगा... मैं ऐसा अनुष्ठान करूँगा... मैं उधर जाकर रहूँगा... ये आपके जीवन में आता है - ऐसी बात नहीं है। मेरे जीवन में भी आया था और मैंने गुरुजी को चिट्ठी लिखी थी : ''डीसा में आश्रम की कुटिया के चारों तरफ झोपड़े हैं और बच्चों की गाली-गलौज सुनाई पड़ती है। दिनभर शोरगुल रहता है। नर्मदा किनारे एकांत गुफा है वहाँ जाकर साधना करूँ ?''

गुरुजी ने उत्तर दिया : ''नहीं, वहीं रहो।''

'चलो, जैसी गुरु-आज्ञा।' फिर परेशानियाँ बढ़ीं। रातभर कुत्ते भौंके, दिनभर लड़के गालियाँ

बकें। दीवारों पर भी कोयले से गंदी-गंदी गालियाँ लिखा करें। मन में होता था : 'यहाँ कैसे साधना हो ? कैसे ईश्वरप्राप्ति हो ?' फिर से गुरुजी को चिट्ठी लिखी : 'रातभर कुत्ते भौंकते हैं, यहाँ जो कुटिया है, वह भी किसी राजनेता ने षड्यंत्र करके जमीन हड़पने के लिए बनायी थी। जब उसके विरोधियों ने आवाज उठायी तो उसने लिखवा दिया : 'श्री लीलाशाह बापू आश्रम।' ऐसा करके आपके नाम का उपयोग किया है और हमको भी ऐसी-ऐसी प्रतिकूलता है।'

बापू ने उत्तर दिया : 'कुत्ते भौंकते हैं तो 'ॐ...ॐ...' बोलते हैं ऐसी भावना करो और राजनेता जो करेगा, वह भरेगा तुम वहीं रहो।'

ऐसा करके मैं सात साल वहीं रहा, गुरु-आज्ञा मानकर। तब पता चला कि गुरुजी की आज्ञा की अगर थोड़ी-सी भी अवहेलना करता तो ऐसा ही होता जैसे ईश्वरप्राप्ति के लिए कई लोग निकलते हैं, साधु भी बन जाते हैं लेकिन फिर बेचारे खड़ियापलटनवाले रह जाते हैं अथवा किसी छोटे-मोटे मठ-मंदिर के पुजारी हो जाते हैं या महंत-मंडलेश्वर बनकर रह जाते हैं। ईश्वरतत्त्व की अनुभूति कोई विरला ही कर पाता है। क्यों ? क्योंकि अविद्या का, माया का बड़ा सूक्ष्म खेल है।

आद्यशंकराचार्यजी कहते हैं :

नास्ति अविद्या मनसोतिरिक्ताः
मन एव अविद्या भवबंध हेतु।
तस्मिन् विलिने सकलं विलीनं
तस्मिन जिगीर्णे सकलं जिगिर्णम्॥

अपना मन ही धर्मात्मा बनकर प्रेरणा देता है : 'मेरा निर्णय सही है।' भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।

मन ही मनुष्य के बंधन एवं मुक्ति का कारण है। यदि मन में जैसा आया वैसा करने लगे तो मन ही बंधन में भटकायेगा। धार्मिक होकर भी कहीं-न-कहीं बाँध देगा, त्यागी होकर भी कहीं-न-कहीं बाँध देगा, योगी होकर भी कहीं-न-कहीं बाँध देगा।

ज्ञानी गुरु की आज्ञा-आदेश के पालन और उनके सहयोग के बिना संसार-सागर से पार होना संभव ही नहीं है। ज्ञानी गुरुदेव कह दो अथवा ज्ञानस्वरूप ईश्वर की विशेष कृपा कह दो, एक ही बात है।

गुरु बिनु भवनिधि तरहिं न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई॥

ब्रह्माजी और शिवजी जैसे समर्थ हों फिर भी 'मैं समर्थ हूँ' - यह जीवभाव बना रहेगा। 'अपना 'मैं' विराट ब्रह्म के साथ एकाकार है, अभिन्न है' ऐसा बोध जिन सत्पुरुषों को हुआ, उनकी दृष्टि से जब तक अपनी आंतरिक सूक्ष्म दृष्टि नहीं मिलती तब तक संसार का दुःख पूरा नहीं मिटता है। अगर संसार की चीज-वस्तुएँ पाकर ही दुःख मिटता हो तो सभी देशों के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री निर्दुःख होने चाहिए, धनी लोग निर्दुःख होने चाहिए, मठाधीश निर्दुःख होने चाहिए। निर्दुःख तो वही हैं, जिन्होंने निर्दुःख परमात्मतत्त्व को अपने आत्मरूप में जाना है, परमेश्वरतत्त्व का जिनको आधार है।

अपने साधन का आधार नहीं, अपनी चतुराई का आधार नहीं, अपनी अकल-होशियारी का आधार नहीं, परमात्मस्वरूप का आधार... परमात्मस्वरूप में जगे हुए महापुरुषों का ही मार्गदर्शन आखिरी दम तक चाहिए।

अगर मैं गुरुजी की आज्ञा की अवहेलना करके सोचता : 'पत्नी बेचारी रोती होगी... माँ वृद्धा है आँसू बहाती होगी... भैया बेचारा मेरे सहयोग से ही कारोबार करता था... बैंक में, इधर-उधर मेरा हस्ताक्षर ही चलता था, अब पैसे कैसे निकालेगा ? दुकान पर उगाही कैसे आयेगी ? जरा जाऊँ-जरा जाऊँ...' मैं जरा-जरा में ही जा मिटता ! लेकिन झटका मारके निकल गया तो निकल गया। वमन किया हुआ फिर क्या चाटना !

डीसा से अमदावाद १५० कि.मी. ही दूर था लेकिन ७ साल तक घरवालों को पता नहीं चलने दिया कि हम डीसा में रहते हैं क्योंकि घर से संपर्क रहेगा तो किसी-न-किसी काम में उलझायेंगे... इसलिए जरा दृढ़ होना पड़ता है। शास्त्र कदम-कदम पर सावधान करते हैं :

गुरुकृपा हि केवलम् शिष्यस्य परम मंगलम्।

अगर डीसा छोड़कर चले जाते अथवा गुरुजी ने कहा : 'वहीं रहो' तब हम सोचते : 'नहीं, हमें

नर्मदा किनारे रहना है । आपने खूब प्यार दिया, आपने खूब मार्गदर्शन दिया, हम आपके आभारी हैं लेकिन अब हम चले जा रहे हैं...' तो हमारी क्या दशा होती ?

गुरुजी के हृदय को सुना-अनसुना करके धोखे से चले जाते अथवा जबरन आज्ञा लेकर चले जाते तो हमारी क्या हालत होती ? हम कल्पना नहीं कर सकते । शक्कर की एक दुकान थी तो दो-पाँच करते और क्या करते ? अथवा तो मठाधीश होकर और लोग जीते हैं वैसे ही जीते । बुढ़ापा आता तो हम सोचते : 'हम बूढ़े हो गये...', बीमारी आती तो हम सोचते : 'हम बीमार हो गये...', शरीर की मौत आनेवाली होती तो लगता : 'हम मर जायेंगे...' मौत आती तो मर भी जाते... लेकिन अब, मौत का बाप भी हमारे आगे खड़ा नहीं रह सकता ।

'मौत होगी तो तन की होगी, मैं तो काल का भी काल हूँ । मौत की भी मौत हो जाय अगर मेरी तरफ आँख उठाकर देखे तो...' यह अनुभव तो गुरुकृपा के बिना संभव ही नहीं था ! बहुत-बहुत ऊँची यात्रा है । इसमें आप टिक जाओ तो आपके दर्शनमात्र से लोगों का मंगल हो सकता है । आपका कुल तर जायेगा...

लेकिन आजकल के शिष्य तो... ईश्वरप्राप्ति की पूर्ण यात्रा करने की तो उनकी मति-गति नहीं है । जब पूछते हैं : ''मैं फलानी जगह जाऊँ'' उस समय अगर 'ना' बोलें तब भी जायेंगे, इसलिए बोलना पड़ता है : 'चलो, बाबा ! जाओ । जैसा तुमको ठीक लगे ।'

गुरु को कहना पड़ता है : 'जैसा तुमको ठीक लगे वैसा करो' तो इसका मतलब है कि शिष्य मनमुख है । शिष्य समर्पित तो है, गुरु के द्वार पर तो रहता है लेकिन मन का दास है । जहाँ गुरु की नजर है और गुरु उसकी जितनी उन्नति, जितनी ऊँचाई चाहते हैं वहाँ के लिए तो गुरु को बोलना पड़ेगा : 'ये नहीं, ये...' लेकिन शिष्य फिर दूसरा कुछ करेगा या तो भाग जायेगा ।

अब भाग जाय उसकी अपेक्षा अथवा नाता तोड़ दे उसकी अपेक्षा 'चलो, लगा रहे' कभी-न-कभी चल पड़ेगा।' सौ-सौ बातें शिष्य की माननी पड़ती हैं । सौ-सौ नखरे और बेवकूफियाँ स्वीकार करनी पड़ती हैं उसकी, ताकि कभी-न-कभी, इस जन्म में नहीं तो किसी और जन्म में पूर्णता को पा लेगा ।

गुरु को क्या लेना है ? अगर गुरु को कुछ लेना है और इसलिए गुरु बने हैं तो वे सचमुच में गुरु भी नहीं हैं । सद्गुरु को तो देना-ही-देना है । सारा संसार मिलकर भी सद्गुरु की सहायता नहीं कर सकता है और अकेले सद्गुरु पूरे संसार की सहायता कर सकते हैं । सद्गुरु ऐसे होते हैं लेकिन संसार उनको सद्गुरु के रूप में समझे, माने, मार्गदर्शन ले, तब ।

जिसकी ईश्वरप्राप्ति की तड़प जितनी ज्यादा है उतनी ही ईमानदारी से वह गुरु की आज्ञा मानेगा । अपने हृदय में ईश्वरप्राप्ति की प्यास, ईश्वरप्राप्ति की तड़प बढ़ायें । ईश्वरप्राप्ति की प्यास और तड़प बढ़ने से अंतःकरण की सारी वासनाएँ, कल्मष और दोष तप-तप कर प्रभावशून्य हो जाते हैं । जैसे, गेहूँ को भून दें तो वे गेहूँ के दाने बोने के काम में नहीं आयेंगे । चने आदि को भून दिया फिर उनका विस्तार नहीं होगा । ऐसे ही ईश्वरप्राप्ति की तड़प बढ़ाकर वासनाएँ भून डालो । फिर वे वासनाएँ संसार के विस्तार में नहीं ले जायेंगी ।

प्रकृति के अनेक उपहार हैं- अन्न, जल, तेज, वायु, आकाश, धरती, फल आदि । इनका उपयोग करके सब आनंद से जी सकते हैं, मुक्तात्मा हो सकते हैं लेकिन राग में, द्वेष में, अधिक खाने में, विकार भोगने में खप रहे हैं बेचारे ! जो ईश्वरप्राप्ति के लिए ही यत्न करते हैं, उधर की मति-गति करते हैं उनका वह ज्ञान नित्य नवीन रस देता है, नित्य नवीन प्रकाश देता है... वे जीवन्मुक्त पुरुष हो जाते हैं, वे परम सुख में विराजते हैं, वे परम आनंद में, परम ज्ञान में, परम तत्त्व में एकाकार रहते हैं । यह बहुत ऊँची स्थिति है ! मानवता के विकास की पराकाष्ठा है यह ।

अपना ऊँचा लक्ष्य बनाओ । सप्ताह में कई बार दोहराओ :

लक्ष्य न ओझल होने पाये,

कदम मिलाकर चल *(शास्त्र-गुरु के अनुभव से)* **।**

सफलता तेरे चरण चूमेगी,

आज नहीं तो कल ॥

साधना के सोपान

(पूज्यश्री के तीन महीने के एकांत-मौन के बाद दक्षिण दिल्ली के पुष्पविहार में हुए सत्संग से उद्धृत कुछ अमृत-पुष्प...)

चार जगह पर व्यावहारिक बात नहीं करनी चाहिए, केवल भगवत्समरण ही करना चाहिए। ये चार स्थान हैं : श्मशान, मंदिर, गुरु-निवास एवं रोगी के पास।

श्मशान में कभी गये तो 'तुम्हारा क्या हाल है ? आजकल धंधा कैसा चल रहा है ? सरकार का ऐसा है...' ना, ना। श्मशान में इधर-उधर की बातें न करें वरन् अपने मन को समझायें : 'आज इसका शरीर आया, देर-सवेर यह शरीर भी ऐसे ही आयेगा... इसको 'मैं-मैं' मत मान, जहाँ से 'मैं-मैं' की शक्ति आती है वही मेरा है... प्रभु ! तू ही तू... तू ही तू... मैं तेरा, तू मेरा। अरे मन ! इधर-उधर की बातें मत कर... देख, वह शव जल रहा है, कभी यह शरीर भी जल जायेगा।' इस प्रकार मन को सीख दें।

महिलाओं को श्मशान में नहीं जाना चाहिए और पुरुषों को अगर श्मशान में जाने को न मिले तो आश्रम द्वारा प्रकाशित 'ईश्वर की ओर' पुस्तक बार-बार पढ़ें। उससे भी मन विवेक-वैराग्य से संपन्न होने लगेगा।

रोगी से मिलने जाओ तब भी संसार की बातें नहीं करनी चाहिए। रोगी से मिलते समय उसको ढाढ़स बँधाओ। उसको कहो : 'रोग तुम्हारे शरीर को है... शरीर तो कभी रोगी, कभी स्वस्थ होता है लेकिन तुम तो भगवान के सपूत, अमर आत्मा हो। एक दिन यह शरीर नहीं रहेगा, फिर भी आप रहेंगे, आप तो ऐसे हैं...' इस प्रकार रोगी में भगवद्भाव की बातें भरें तो आपका रोगी से मिलना भी भगवान की भक्ति हो जायेगा। रोगी के अंदर बैठा हुआ परमात्मा आप पर संतुष्ट होगा और आपके दिल में बैठा हुआ वह रब भी आप पर संतुष्ट होगा।

अगर आप मंदिर-गुरुद्वारे में जाते हो तो वहाँ पर भी सांसारिक चर्चा न करो, इधर-उधर की बातें छोड़ दो। वहाँ तो ऐसे रहो कि एक-दूसरे को पहचानते ही नहीं और पहचानते भी हो तो रब के नाते। अन्यथा भगवान और गुरु का नाता तो ठंडा हो जाता है और पहचान बढ़ जाती है 'आप मेरे घर आइये... आप यह करिये... आप वह करिये..., जरा ध्यान रखना उसका लड़का ठीक है, अपने ही हैं...' मंदिर-गुरुद्वारे में जाकर भगवद्भाव जगाना होता है, संसार को भूलना होता है। अगर वहाँ जाकर भी संसार की बातें करोगे तो मुक्ति कहाँ पाओगे ? दुःखों से विनिर्मुक्त कहाँ होगे ? इसलिए मुक्ति के रास्ते को गंदा मत करो, वरन् गंदे रास्तों को भी भगवद्भक्ति से सँवार लो।

अगर गुरु के निवास पर जाते हो, गुरु के निकट जाते हो, तब भी सांसारिक बातों को महत्त्व न दो। गुरु को निर्दोष निगाहों से, प्रेमभरी निगाहों से, भगवद्भाव की निगाहों से देखो और उन्हें संसार की छोटी-छोटी समस्या सुनाकर उनका दिव्य खजाना पाने से वंचित न रहो। उनके पास से तो वह चीज मिलती है जो करोड़ों जन्मों में करोड़ों माता-पिता से भी नहीं मिली। ऐसे माता-पिता-गुरु मिले हैं तो फिर संसार के छोटे-मोटे खिलौनों की बात नहीं करनी चाहिए।

इस प्रकार चार जगहों पर सांसारिक चर्चा से बचकर भगवत्चर्चा, भगवत्सुमिरन करें, मंदिर-गुरुद्वारे एवं संतद्वार पर जप-ध्यान करें तो आपके लिए मुक्ति का पथ प्रशस्त हो जायेगा...

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १०८ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अक्टूबर २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

वैराग्य-अग्नि प्रज्वलित करें...

(जैसे, गाय दिनभर के चारे का कुछ साररूप अमृत अपने बछड़े को दूधरूप में पिलाती है ऐसे ही प्राचीन ग्रंथों-पुराणों और उपनिषदों का साररूप अमृत-रस संचित करके, पूज्य बापूजी अपने भक्तों को पिला रहे हैं। यह ज्ञानामृत 'चित्त का इलाज' कैसेट से संकलित है।)

पुराण में यह प्रसंग आता है, श्रीकृष्ण उद्धव को यह प्रसंग सुनाते हैं :

भगवान श्रीहरि के अंशावतार नर-नारायण नामक ऋषि पवित्र स्थान बदरिकाश्रम में तपस्या कर रहे थे। उनके तप को भंग करने के लिए देवराज इन्द्र ने अप्सराएँ भेजीं, लेकिन नर-नारायण ने चित्त से पार का निर्विकल्प सुख पाया था, वे क्रिया के सुख में कैसे गिर सकते थे ?

नर-नारायण ने उन अप्सराओं की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं ! कामदेव और रति के साथ आयी हुई वे अप्सराएँ अपने प्रयत्न में असफल रहीं। नर-नारायण अपने सहजस्वरूप से नीचे नहीं आये। निर्विकल्प से सविकल्प में, सविकल्प से भाव में और भाव से क्रिया में नहीं आये।

होता ऐसा है कि तत्त्व से, निर्विकल्प से सविकल्प में आया जाता है, सविकल्प से भाव में और भाव से क्रिया होती है। क्रिया में उलझ गये तो क्रिया को थामो, भाव में आओ। भाव को बदलो, समाधि में आओ। समाधि को बदलकर तत्त्व में चले आओ तो आप भी नर-नारायण स्वरूप हो जाओगे।

देवराज इन्द्र की भेजी हुई अप्सराओं से नर-नारायण विचलित न हुए, वरन् नारायण ने अपने उरु से एक अत्यंत रूपवती अप्सरा 'उर्वशी' को उत्पन्न किया। जिसके आगे इन्द्र की अप्सराएँ भी फीकी पड़ गयीं। नारायण ने वह उर्वशी इन्द्र को भेंट दे दी।

स्वर्ग से आयी अप्सराओं ने कहा : ''देवेन्द्र ने हमें आपकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए भेजा था।

महाभाग ! आप देवाधिदेव नारायण हैं। हम चाहती हैं कि आपकी सेवा करें। आप हमें स्वीकार करने की कृपा करें।''

नारायण : ''अभी नहीं। हमने इस जन्म में तय कर रखा है कि विवाह नहीं करेंगे। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के द्वापर में मैं भूमण्डल पर प्रगट होऊँगा। उस समय तुम सभी अलग-अलग जन्म लेकर मेरी पत्नी बनोगी।''

वे ही नर और नारायण द्वापर में श्रीकृष्ण और बलराम के रूप में प्रगट हुए थे एवं वे ही अप्सराएँ श्रीकृष्ण की रानियाँ बनी थीं, ऐसी कथा है।

नारायण द्वारा प्रगट की गयी उर्वशी नृत्यकला में अद्वितीय थी। शोभा एवं रूप-लावण्य में भी सबसे बढ़-चढ़कर थी।

जब योग्यता बढ़ जाती है और अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं रहता तो परिच्छिन्नता रहती है, अहंकार आ जाता है और जब अहंकार आ जाता है तब सारी योग्यताओं पर पानी फिर जाता है।

कोई कितना भी पुण्यात्मा हो, कितना भी धर्मात्मा हो, कितना भी बलवान हो, कितना भी विद्वान हो, कितना भी धनवान हो, कितना भी सत्तावान हो लेकिन जब अहंकार आ जाता है तब सारे गुण अवगुण में परिवर्तित हो जाते हैं।

उर्वशी नृत्य कर रही थी। नृत्य करते-करते उसे लगा : 'मैं कितना सुंदर नृत्य कर रही हूँ !' उसमें 'मैं' की परिच्छिन्नता आ गयी...

क्रिया सहज में होती है तो समाधि जैसा सुख होता है लेकिन क्रिया का मूल्यांकन करके जीव कर्ता

बन जाता है तो सहज क्रिया के नीचे की स्थिति में आ जाता है। आप जब ऑफिस में, दुकान में, देश में, परदेश में, जहाँ भी काम करते हो और आनंद आता है तो समझो, आप अपने कर्ताभाव को भूले हुए हो। क्रिया तो हो रही है लेकिन अनजाने में आप भावना के जगत में पहुँचे हो, अनजाने में आप समाधि के जगत में पहुँचे हो, तब काम करने में आपको मजा आता है। आप जब आनंदित होते हो तो आपके द्वारा सुहावने निर्णय आते हैं। अतः जिस समय जो काम करें दिलचस्पी से करें, काम के लिए काम करें, फल की आकांक्षा के लिए नहीं। यदि व्यवहार करते समय हमारी नजर फल पर होती है तो व्यवहार का रस नहीं मिलता, लेकिन यदि हमारी नजर परमात्मा पर होती है तो व्यवहार का फल भी सुंदर होता है और अंतःकरण शुद्ध होता है।

उर्वशी को गर्व हुआ कि मैं कितना सुन्दर नृत्य कर रही हूँ तो वह नृत्य की कला भूल गयी। तब ब्रह्मदेव ने शाप दिया : 'जा, मृत्युलोक को प्राप्त हो।'

उर्वशी को अपनी गलती का पता चल गया कि मुझमें मद आ गया था। उर्वशी ने क्षमायाचना की। ब्रह्माजी का क्रोध शांत हुआ और बोले :

''जब तू ऐल (पुरुरवा) राजा को नग्न अवस्था में देखेगी तब शाप से मुक्त होगी और तुझे पुनः स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा।''

इन्द्र ने देखा कि बेचारी उर्वशी मृत्युलोक में जा रही है। वह जल्दी से शापनिवृत्त हो जाय इसलिए दो अश्विनी कुमारों को मेढ़े के रूप में साथ में दे दिया।

ऐल राजा महाप्रतापी था। बड़े-बड़े मुकुटधारी राजा उसके आगे नतमस्तक होते थे। वह गरीबों का सहायक और प्रजा का पालक था, साधु-संतों का आदर करनेवाला था, मित्रों का परम सुहृद था और शत्रुओं के लिए काल के समान था। विद्या एवं धन से संपन्न होते हुए भी निरभिमानी और दानी था।

ऐसे रूप, गुण, वैभव, सदाचार एवं शक्तिसंपन्न राजा ऐल को उर्वशी ने अपने चंगुल में फँसा लिया। राजा पुरुरवा उसके मोह में पड़ गया। मोह में पड़ा तो इन्द्रियों के सुख में पड़ गया और इन्द्रियों का सुख बार-बार भोगने से आदमी आत्मसुख से, समाधि के सुख से, भाव के सुख से नीचे आ जाता है।

समाधि का सुख बार-बार लेने से इन्द्रियों के सुख से मनुष्य ऊपर उठ जाता है, विकारों के सुख से ऊपर उठ जाता है। जबकि बार-बार विकारों का सुख भोगने से मनुष्य समाधि के सुख से, आत्मसुख से नीचे आ जाता है।

इतना प्रतापी और यशस्वी राजा भी धीरे-धीरे उर्वशी के वश में हो गया। उर्वशी जैसा कहती वैसा ही राजा करता। जैसे, बंदर मदारी के इशारे पर नाचता है ऐसे ही वह राजा उसके इशारे पर नाचता। इस तरह वर्षों बीत गये।

एक रात्रि को इन्द्र की प्रेरणा से गंधर्व मेढ़ों को चुराकर ले गये। जब वे मेढ़ों को ले चले तो मेढ़े चिल्लाने लगे। उर्वशी उन मेढ़ों को पुत्र के समान मानती थी। उनके चिल्लाने की आवाज सुनकर वह क्रोधित हो उठी और बोली :

''राजन् इन मेढ़ों को सुरक्षित रखने की तुमने प्रतिज्ञा की थी, किन्तु ! आज तुम्हारे विश्वास में आकर मैं बरबाद हो गयी। मेरे पुत्र के समान इन मेढ़ों को चोरों ने चुरा लिया और तुम स्त्री के समान आँखें मूँदे पड़े हो। तुम्हें धिक्कार है ! तुम कैसे राजा हो ? कैसे वीर हो ? चोरों से मेढ़ों को नहीं छुड़वा सकते ?''

जब स्त्री अपमान कर देती है तो पुरुष को ज्यादा जोश आ जाता है।

राजा हथियार लेकर मेढ़ों के पीछे भागा तो कपड़ों तक का ख्याल न रहा। कहाँ तो प्रतापी, यशस्वी राजा ऐल और कहाँ स्त्री की आज्ञा से मेढ़ों को बचाने के लिए भागा जा रहा है... कटिवस्त्र भी छूट गया, एकदम दिगंबर हो गया। इतने में बिजली चमकी और बिजली के प्रकाश में उर्वशी ने राजा को नग्नावस्था में देख लिया। राजा का बचा हुआ तप-तेज उर्वशी के हिस्से चला गया और वह शाप से मुक्त हो गयी, उसका तो काम बन गया।

मेढ़ों को लेकर अपने भवन में लौटने पर राजा

को उर्वशी स्वर्ग में जाने के लिए तत्पर दिखाई दी। उर्वशी को देखकर राजा बोला : ''अरी सुन्दरी ! कमललोचनी ! ठहरो। मुझे सुखी करो। मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया है। तुम्हारे बिना मैं कैसे जीऊँगा ? तुम्हारे लिए तो मैंने अपना राज्य तक छोड़ दिया।''

इस प्रकार राजा ऐल विलाप करने लगे।

उर्वशी : ''महाराज ! तुम बड़े मूर्ख हो। तुम्हारी बुद्धि कुंठित हो गयी है। इस दुनिया में कोई किसीका सहारा नहीं होता। सच्चा सहारा तो एक परमात्मा ही है।''

स्त्री फटकारे, लानत दे फिर भी अंदर वैराग्य नहीं होता, विवेक नहीं होता क्योंकि क्रिया के सुख से हम लोगों का इतना तादात्म्य हो जाता है कि अपमान भी उस वक्त मजाक लगता है।

उर्वशी ने राजा को समझाने का यत्न किया कि तुमने कई बार मेरे शरीर का आलिंगन किया, वर्षों तक किया। इससे तुम्हें क्या मिला ? जरा सोचो। देह नश्वर है और देह का सुख भी नश्वर है। क्रिया के नश्वर सुख में तुम अपने शाश्वत प्रभु को क्यों भूलते हो ?''

फिर भी राजा ऐल का मोह न गया। ऐल गिड़गिड़ाने लगा। आखिर उर्वशी का हृदय पिघला। उसने गंधर्वों से अग्निपात्र लेकर दिया और कहा : ''इस अग्निपात्र में हवन करोगे तो तुम स्वर्ग को प्राप्त होगे और हम फिर वहाँ भोग भोगेंगे।''

अग्निपात्र लेकर राजा अपने महल में चला गया। अग्निपात्र में उसने हवन किया। उसके प्रताप से वह स्वर्ग गया और उसने चिरकाल तक उर्वशी के साथ भोग भोगे।

उर्वशी के साथ भोग भोगते-भोगते ऐल जब क्षीणकाय हुआ, पुण्य क्षीण हुए तब उसे वैराग्य आया कि अरे ! मुझे धिक्कार है। मैं कहाँ तो प्रतापी राजा, कहाँ तेजस्वी राजा, कहाँ धर्मात्मा और प्रजापालक राजा और कहाँ मैंने अपना जीवन विषय-विकारों में बरबाद कर दिया ! इसमें उर्वशी का कसूर नहीं है, कसूर मेरा ही है। मैं अपने महा प्रताप को भूलकर शापित उर्वशी के चक्कर में पड़ा ! अरे काम ! तुझे धिक्कार है ! अरे क्रिया के सुख ! तुझे धिक्कार है ! मुझ जैसे प्रतापी राजा का तूने हरण कर लिया ! बड़े-बड़े ऋषियों को, तपस्वियों को भी तूने ही गिराया है ! अरे, काम ! तुझे धिक्कार है। जो तेरा ग्रास हो जाता है उसके पश्चात्ताप का कोई पार नहीं रहता है।

जीव जब परमात्मा की शरण में जाता है तो उसका हृदय शुद्ध होने लगता है। जब वह भोग-भोगता है तो उसका हृदय अशुद्ध होता है। भोगों की तुच्छता का ख्याल करके परमात्मा की स्मृति करता है तो चित्त शुद्ध होता है।

पानी को जब अग्नि का संयोग मिलता है तो वाष्पीभूत होने लगता है। एक पानी की बूँद को जब अग्नि का संयोग मिलता है तो उसमें १३०० गुनी ताकत आ जाती है। ऐसे ही चित्त को जब विवेक-वैराग्य की अग्नि मिलती है तब चित्त बड़ा शक्तिशाली हो जाता है, सूक्ष्म हो जाता है और ऐसा चित्त परमात्म-यात्रा में सफल होने लगता है।

अतः भोगों की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता का ख्याल करके विवेक जगायें, वैराग्यरूपी अग्नि से चित्त को सूक्ष्म करके परमात्म-पथ पर अग्रसर होते जायें। यही जीवन का साफल्य है।

जानिअ तबहिं जीव जग जागा, जब सब विषय बिलास बिरागा।

(श्रीरामचरितमानस)

जिन्होंने अपने जीवन का मूल्य नहीं जाना, जिनमें विषय-वासना की प्रबलता होती है वे ही निरंकुश बन्दर की तरह एक डाल से दूसरी डाल, कभी काशी कभी मथुरा, कभी डाकोर तो कभी रामेश्वर, कभी गुप्तकाशी तो कभी गंगोत्री, इधर-से-उधर घूमते रहते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि इन बहिरंग दौड़-धूप में शक्ति और एकाग्रता क्षीण होती है। आहार की शुद्धि से, चिन्तन की शुद्धि से सत्त्वगुण की रक्षा की जाती है। अशुद्ध आहार, अशुद्ध विचारवाले व्यक्तियों के संग से बचना चाहिए।

(आश्रम की 'साधना में सफलता' पुस्तक से)

क्या आप तेजस्वी एवं बलवान बनना चाहते हैं ?

संसार में प्रत्येक व्यक्ति आरोग्य और दीर्घ जीवन की इच्छा रखता है । चाहे किसीके पास कितने ही सांसारिक वैभव और सुख सामग्रियाँ क्यों न हों पर यदि वह स्वस्थ नहीं है तो उसके लिए वे सब साधन-सामग्री व्यर्थ हैं । आरोग्य-शास्त्र के आचार्यों ने स्वास्थ्य साधन की मूल चार बातें बतलायी हैं : आहार, श्रम, विश्राम और ब्रह्मचर्य । ब्रह्मचर्य के विषय में भगवान धन्वंतरि ने कहा है : ''जो शांति-कांति, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम सन्तति चाहता हो उसे संसार के सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।'' आयुर्वेद के आचार्य वाग्भट्ट का कथन है : ''संसार में जितना सुख है वह आयु के अधीन है और आयु ब्रह्मचर्य के अधीन है ।'' आयुर्वेद के आदि ग्रंथ 'चरक संहिता' में ब्रह्मचर्य को सांसारिक सुख का साधन ही नहीं मोक्ष का दाता भी बताया गया है :

सतामुपासनं सम्यगसतां परिवर्जनम् ।
ब्रह्मचर्योपवासश्च नियमाश्च पृथग्विधाः ॥

''सज्जनों की सेवा, दुर्जनों का त्याग, ब्रह्मचर्य, उपवास, धर्मशास्त्र के नियमों का ज्ञान और अभ्यास आत्मकल्याण का मार्ग है ।''

(दू. भा. १४३)

आयुर्वेद के महान आचार्यों ने सभी श्रेणियों के मनुष्यों को चेतावनी दी है कि यदि वे अपने स्वास्थ्य और आरोग्य को स्थिर रखते हुए सुखी जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं तो प्रयत्नपूर्वक वीर्यरक्षा करें । **वीर्य एक ऐसी पूँजी है, जिसे बाजार से नहीं खरीदा जा सकता, जिसके अपव्यय से व्यक्ति ऐसा गरीब बनता है कि प्रकृति भी उसके ऊपर दया नहीं करती, आरोग्य लुट जाता है, आयु क्षीण हो जाती है । यह पूँजी कोई उधार नहीं दे सकता । इसकी भिक्षा नहीं माँगी जा सकती । अतः सावधान !**

जो नवयुवक सिनेमा देखकर, कामविकार बढ़ानेवाली पुस्तकें पढ़कर या अनुभवहीन लोगों की दलीलें सुनकर स्वयं भी ब्रह्मचर्य को निरर्थक कहने लगते हैं, वे अपने चारों तरफ निगाह दौड़ाकर अपने साथियों की दशा देखें । उनमें से हजारों जवानी में ही शक्तिहीनता का अनुभव करके 'ताकत की दवाएँ' या 'टॉनिक' आदि ढूँढ़ने लगते हैं । हजारों प्रमेह के शिकार होकर निस्तेज चेहरे को लिए फिरते हैं और हजारों ऐसे भी हैं जो भयंकर रोगों के शिकार बनकर अपने जीवन को बर्बाद कर लेते हैं ।

नेत्र व कपोल अन्दर धँस जाना, कोई रोग न होने पर भी शरीर का जर्जर, ढीला-सा रहना, गालों में झाँई-मुँहासे, काले चकत्ते पड़ना, जोड़ों में दर्द, तलवे तथा हथेली पसीजना, अपच और कब्जियत, रीढ़ की हड्डी का झुक जाना, एकाएक आँखों के सामने अँधेरा छा जाना, मूर्छा आ जाना, छाती के मध्य भाग का अन्दर धँस जाना, हड्डियाँ दिखना, आवाज का रूखा और अप्रिय बन जाना, सिर, कमर तथा छाती में दर्द उत्पन्न होना- ये वे शारीरिक विकार हैं जो वीर्यरक्षा न करनेवाले युवकों में पाये जाते हैं ।

धिक्कार है ! उस पापमय जिन्दगी पर, जो मक्खियों की तरह पापों की विष्ठा के ऊपर भिनभिनाने में और विषय-भोगों में व्यतीत होती है । जिस तत्त्व को शरीर का राजा कहा जाता है और बल, ओज, तेज, साहस, उत्साह आदि सब जिससे स्थिर रहते हैं, उसको नष्ट करके ब्रह्मचर्य को निरर्थक तथा अवैज्ञानिक कहनेवाले अभागे लोग जीवन में सुख-शांति और सफलता किस प्रकार पा सकेंगे ? ऐसे लोग निश्चय ही दुराचारी, दुर्गुणी, शठ, लम्पट बनकर अपना जीवन नष्ट

करते हैं और जिस समाज में रहते हैं उसे भी तरह-तरह के षड्यंत्रों द्वारा नीचे गिराते हैं।

चारित्रिक पतन के कारणों में अश्लील साहित्य का भी हाथ है। निम्न प्रवृत्तियों के अनेक लेखक उसकी गरिमा को बिलकुल भुला बैठे हैं। लेखकों की एक ऐसी श्रेणी पैदा हो गयी है जो यौन-दुराचार तथा कामुकता की बातों का यथातथ्य वर्णन करने में ही अपनी विशेषता समझती है। इस प्रकार की पुस्तकों तथा पत्रिकाओं का पठन युवकों के लिए बहुत घातक होता है। बड़े नगरों में कुछ पुस्तक विक्रेता सड़कों पर अश्लील चित्र एवं पुस्तकें बेचते हैं। अखबारों के रंगीन पृष्ठों पर ऐसे चित्र छापे जाते हैं जिन्हें देखकर बेशर्मी भी शरमा जाये।

जीवन के जिस क्षेत्र में देखिये सिनेमा का कुप्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सिनेमा तो शैतान का जादू, कुमार्ग का कुआँ, कुत्सित कल्पनाओं का भण्डार है। मनोरंजन के नाम पर स्त्रियों के अर्धनग्न अंगों का प्रदर्शन करके, अश्लीलतापूर्ण गाने और नाच दिखाकर विद्यार्थियों तथा नवयुवक-युवतियों में जिन वासनाओं और कुप्रवृत्तियों को भड़काया जाता है उससे उनका नैतिक स्तर चरमरा जाता है। सिनेमा ने किशोरों, युवकों तथा विद्यार्थियों का जितना पतन किया है इतना शायद अन्य किसीने नहीं किया।

छोटे-छोटे बच्चे बीड़ी-सिगरेट फूँकते हैं, पान-मसाला खाते हैं, सिनेमा के भद्दे गाने गाते हैं, कुचेष्टाएँ करते फिरते हैं। पापाचरण से अनजाने में ही अपने भावी सुख, स्वास्थ्य, आयु की जड़ें खोखली कर डालते हैं। वीर्यनाश का फल उन्हें उस समय तो विदित नहीं होता, कुछ आयु बढ़ने पर मोह का पर्दा हटता है। फिर वे अपने अज्ञान के लिए पश्चात्ताप करते हैं। ऐसे बूढ़े नवयुवक आज गली-गली में चूरन, चटनी, माजून, वीर्यवर्धक गोलियाँ ढूँढ़ते फिरते हैं लेकिन उन्हें ठगा जाता है तथा उन्हें घोर निराशा ही हाथ लगती है। अतः प्रत्येक माता-पिता, अध्यापक, सामाजिक संस्थायें तथा धार्मिक संगठन कृपा करके पतन की गहरी खाई में जा रही युवा पीढ़ी को बचायें।

यदि समाज सदाचार को महत्त्व देनेवाला हो और चरित्रहीनता को हेय दृष्टि से देखता हो तो बहुत कम व्यक्ति कुमार्ग पर जाने का साहस करेंगे। यदि समाज का सदाचारी भाग प्रभावशील हो तो व्यभिचार के इच्छुक भी गलत मार्ग पर चलने से रुक सकेंगे। सदाचारी व्यक्ति अपना तथा अपने देश और समाज का उत्थान कर सकता है और किसी उच्च लक्ष्य को पूरा करके लोक और परलोक में सद्गति का अधिकारी बन सकता है।

संसार वीर्यवान के लिए है। वीर्यवान जातियों ने संसार में राज्य किया और वीर्यहीन होने पर उनका नामोनिशान मिट गया। वीर्यहीन डरपोक, कायर, दीन-हीन और दुर्बल होता है। ज्यों-ज्यों वीर्यशक्ति क्षीण होती है मानो मृत्यु का संदेश सुनाती है। वीर्य को नष्ट करनेवाला जीवनभर रोगी, दुर्भाग्यशाली और दुःखी रहता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा, क्रोधी और रूक्ष बन जाता है। उसके मन में कामी विचार हुड़दंग मचाते रहते हैं, मानसिक दुर्बलता बढ़ जाती है, स्मृति कमजोर हो जाती है।

जैसे, सूर्य संसार को प्रकाश देता है, वैसे ही वीर्य मनुष्य, पशु-पक्षियों और वृक्षों में अपना प्रभाव दिखाता है। जिस प्रकार सूर्य रश्मियों से रंग-बिरंगे फूल विकसित होकर प्रकृति का सौंदर्य बढ़ाते हैं, इसी प्रकार यह वीर्य भी अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों में अपनी प्रभा की छटा दिखाता है। **ब्रह्मचर्य से बुद्धि प्रखर होती है, इन्द्रियाँ अंतर्मुखी हो जाती हैं, चित्त में एकाग्रता आती है, आत्मिक बल बढ़ता है, आत्मनिर्भरता, निर्भीकता आदि दैवी गुण स्वतः प्रगट होने लगते हैं।** वीर्यवान पुरुषार्थी होता है, कठिनाई का मुकाबला कर सकता है, वह सजीव, शक्तिशाली और दृढ़निश्चयी होता है। उसे रोग नहीं सताते, वासनाएँ चंचल नहीं बनाती, दुर्बलताएँ विवश नहीं करतीं। वह प्रतिभाशाली व्यक्तित्व प्राप्त करता है और दया, क्षमा, शांति, परोपकार, भक्ति, प्रेम, स्वतंत्रता तथा सत्य द्वारा पुण्यात्मा बनता है। धन्य हैं ऐसे वीर्यरक्षक युवान।

परशुराम, हनुमान और भीष्म इसी व्रत के बल पर न केवल अतुलित बलधाम बने बल्कि उन्होंने जरा और मृत्यु तक को जीत लिया। हनुमान ने समुद्र पार कर दिखाया और एक अकेले परशुराम ने

इक्कीस बार पृथ्वी से आततायी और अनाचारी राजाओं को नष्ट कर डाला। परशुराम और हनुमान के पास तो मृत्यु आयी ही नहीं, पर भीष्म ने तो उसे आने पर डाँटकर ही भगा दिया और रोम-रोम में बिधे बाणों की सेज पर तब तक सुखपूर्वक लेटे रहे, जब तक कि सूर्य उत्तरायण नहीं हो गये । सूर्य के उत्तरायण हो जाने पर ही उन्होंने स्वयं मृत्यु का वरण किया। शरशैय्या पर लेटे हुए भी वे केवल जीवित ही नहीं बने रहे अपितु स्वस्थ और चैतन्य भी बने रहे। महाभारत के युद्ध के पश्चात् उन्होंने इसी अवस्था में पाण्डवों को धर्म तथा ज्ञान का आदर्श उपदेश भी दिया। यह सारा चमत्कार उस ब्रह्मचर्य व्रत का ही था, जिसका उन्होंने आजीवन पालन किया था।

दीपक का तेल बाती से होता हुआ उसके सिरे पर पहुँचकर प्रकाश उत्पन्न करता है। यदि दीपक की पेंदी में छेद की दिशा अधोमुखी हो तो न दीपक जलेगा और न तेल बचेगा । यौनशक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाना प्रयत्न और अभ्यास के द्वारा संभव है।

कालिदास ने प्रयत्न और अभ्यास से इसे सिद्ध करके जड़ बुद्धि से महाकवि बनने में सफलता प्राप्त की। पत्नी को एक क्षण के लिए छोड़ने को तैयार नहीं, ऐसे तुलसीदासजी ने जब संयम, ब्रह्मचर्य की दिशा पकड़ी तो वे श्रीरामचरितमानस जैसे ग्रंथ के रचियता और संत महापुरुष बन गये। वीर्य को ऊर्ध्वमुखी बनाकर संसार में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करनेवाली ज्ञात-अज्ञात विभूतियों का विवरण इकट्ठा किया जाय तो उनकी संख्या हजारों में नहीं, लाखों में हो सकती है।

रामकृष्ण परमहंस विवाहित होकर भी योगियों की तरह रहे, वे सदैव आनन्द-मग्न रहते थे। स्वामी रामतीर्थ और महात्मा बुद्ध ने तो ऊर्ध्वसुख के लिए तरुणी पत्नियों तक का परित्याग कर दिया था। महर्षि दयानन्द ब्रह्मचारी होकर, ब्रह्मचर्य के ओज-तेज से संपन्न होकर अमर हो गये। नेपोलियन २५ वर्ष की आयु तक कामसुख तो क्या, नारी के प्रति आकृष्ट भी नहीं हुए थे । न्यूटन के मस्तिष्क में यौनाकर्षण उठा होता तो उसने अपना बुद्धि-कौशल सृष्टि के रहस्य जानने की अपेक्षा कामसुख प्राप्त करने में झोंक दिया होता । बोलते समय काँपनेवाले मोहनदास गृहस्थ होते हुए भी वीर्य को ऊर्ध्वगामी दिशा देकर अपनी आवाज़ से करोड़ों लोगों में प्राण फूँकनेवाले महात्मा गाँधी हो गये । इस ब्रह्मचर्य व्रत को उन्होंने किस प्रकार ग्रहण किया और कैसे प्रयत्नपूर्वक इसका पालन किया इस सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं :

''खूब चर्चा और दृढ़ विचार करने के बाद १९०६ में मैंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। व्रत लेते हुए मुझे बड़ा कठिन मालूम हुआ। मेरी शक्ति कम थी। विकारों को कैसे दबा सकूँगा ? पत्नी के साथ रहते हुए विकारों से अलिप्त रहना भी अजीब बात मालूम होती थी। फिर भी मैं देख रहा था कि यह मेरा स्पष्ट कर्तव्य है। मेरी नीयत साफ थी। यह सोचकर कि ईश्वर शक्ति और सहायता देंगे, मैं कूद पड़ा। अब बीस वर्ष बाद उस व्रत को स्मरण करते हुए मुझे सानन्द आश्चर्य होता है। संयम करने का भाव तो सन् १९०१ से ही प्रबल था और उसका पालन भी कर रहा था, परन्तु जो स्वतंत्रता और आनन्द मैं अब पाने लगा वह मुझे याद नहीं कि पहले कभी मिला हो। ब्रह्मचर्य के सोलह आने पालन का अर्थ है 'ब्रह्मदर्शन' । इसके लिए तन, मन और वचन से समस्त इन्द्रियों का संयम रखना अनिवार्य है । इस ब्रह्मचर्य में त्याग की बड़ी आवश्यकता है। प्रयत्नशील ब्रह्मचारी नित्य अपनी त्रुटियों का दर्शन करेगा तो अपने हृदय के कोने-कोने में छिपे विकारों को पहचान लेगा और उन्हें बाहर निकालने का प्रयत्न करेगा।''

महात्मा गाँधी ने ३६ वर्ष की अवस्था के बाद काम-वासना को बिलकुल नियंत्रित कर दिया था तो भी उनके जीवन से प्रसन्नता का फव्वारा छूटता रहता था। तब फिर 'काम' को जीवन का प्रधान सुख तथा ब्रह्मचर्य को निरर्थक एवं अवैज्ञानिक कहना महा मूर्खता नहीं है ? असाधारण दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर भी यदि मनुष्य अपना अमूल्य शरीर सांसारिक कामविकारों में नष्ट कर दे तो उसे चंदन के वन को सूखी लकड़ियों के भाव बेचनेवाले मूर्ख लकड़हारे की तरह ही समझा जायेगा।

*

जिनमें प्रारब्ध को भी बदलने का सामर्थ्य है

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

पुरुषार्थ का जीवन में कितना महत्त्व है यह मेरे गुरुदेव के जीवन के दो प्रसंगों से परिलक्षित होता है :

मेरे गुरुदेव के बारे में ज्योतिषी ने कहा था : 'उनका विवाह होगा एवं संतान कन्याएँ ही होंगी।' लेकिन गुरुदेव ने तो परमपद की प्राप्ति के लिए योगी का वेश धारण कर लिया, जीवनभर ब्रह्मचारी ही रहे। संसार की मायाजाल में फँसे बिना, परमपद को पाकर जीवन्मुक्त हो गये ! कहाँ ज्योतिषी की भविष्यवाणी और कहाँ मेरे गुरुदेव की ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की तत्परता, लगन और दृढ़ता !

दूसरा विनोदी प्रसंग भी जानने जैसा है। एक बार मेरे सद्गुरुदेव पूज्यपाद लीलाशाहजी भगवान अपने सेवक वीरभान के साथ समुद्रतट पर टहल रहे थे। रास्ते में उन्हें एक ज्योतिषी मिल गया।

पूज्य गुरुदेव को देखकर वह बोला : ''भगवान को पाने के लिए आपने खूब प्रयत्न किया है। घर छोड़ा है और खूब तड़पे हैं।''

पूज्य गुरुदेव ने पूछा : ''परंतु यह तो कहो कि मुझे भगवान कब मिलेंगे ?''

ज्योतिषी : ''आपको भगवान के दर्शन तीव्र परिश्रम करने के बाद तीन साल, तीन महीने, तेरह दिन और छः घण्टे के बाद होंगे।''

फिर बात को मोड़ते हुए वह बोला : ''आपको किसी खास फूल की इच्छा हो तो मैं बनाकर दूँ।''

वह ज्योतिषी तुरंत मन चाहे फूल बनाने की विद्या जानता था परंतु पूज्य गुरुदेव फूल की बात से प्रभावित हुए बिना भगवत्प्राप्ति के संदर्भ में बोल पड़े : ''भगवान हमें मिलेंगे नहीं क्योंकि भगवान तो हमारा आपा है। वीरभान ! ज्योतिषी को पाँच रुपये दक्षिणा दे दे।''

पूज्य गुरुदेव की आत्मानुभव-संपन्न वाणी मानो, याद दिला रही थी :

कबीरा मन निर्मल भयो जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरे कहत कबीर-कबीर॥

ज्ञानी महापुरुष ऐसे पद को पाये हुए होते हैं कि जहाँ न बंधन है, न मोक्ष। प्रारब्ध के अनुसार शरीर के भोग-भोगते हुए भी वे स्वयं आत्मभाव में ही विचरण करते हैं। सब कुछ करते हुए भी स्वयं को अकर्ता-अभोक्ता जानते हैं। इसलिए संतों पर किसी ग्रह का प्रभाव नहीं पड़ता। ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव केवल शरीर तक होता है। संत-महापुरुष तो ऐसी ऊँचाई पर विराजमान होते हैं कि उन पर क्या किसीका प्रभाव पड़े, उनसे तो ब्रह्मलोक तक के जीवों का कल्याण हो जाता है।

पूर्ण पुरुष विधातास्वरूप होते हैं।

ब्रहम गिआनी पूरन पुरखु बिधाता।

(गुरुवाणी)

तुम अपने को दीन-हीन कभी मत समझो। तुम आत्मस्वरूप से संसार की सबसे बड़ी सत्ता हो। तुम्हारे पैरों तले सूर्य और चन्द्र सहित हजारों पृथ्वियाँ दबी हुई हैं। तुम्हें अपने वास्तविक स्वरूप में जागनेमात्र की देर है। अपने जीवन को संयम-नियम और विवेक-वैराग्य से भरकर आत्माभिमुख बनाओ। किसने तुम्हें दीन-हीन बनाये रखा है ? किसने तुम्हें अज्ञानी और मूढ़ बनाये रखा है ? मान्यताओं ने ही न... ? तो छोड़ दो उन दुःखद मान्यताओं को। जाग जाओ अपने स्वरूप में। आपको मात्र जागना है... बस। इतना ही काफी है। आपके तीव्र पुरुषार्थ और सद्गुरु के कृपा-प्रसाद से वह कार्य सिद्ध हो जाता है।

(आश्रम की 'पुरुषार्थ परमदेव' पुस्तक से)

भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी

[गतांक से आगे]

भगवान बड़े ही भक्तवत्सल हैं, उनकी लीला ऐसी ही होती है। पूरे बरसाने में यह बात फैल गयी, गोस्वामीजी के स्थान पर बड़ी भीड़ हो गयी। कुछ कृष्ण-उपासकों के मन में द्वेष-भाव आ गया, वे धनुष-बाण धारण करने पर शंका करने लगे। उन्हें गोस्वामीजी ने समझाया कि भैया ! राम ने अपने सेवकों का प्रण कब नहीं रखा है ? वे सर्वदा अपने भक्तों की इच्छा पूर्ण करते हैं।

जो कृष्ण हैं वही राम हैं, जो राम हैं वही कृष्ण हैं यह आम आदमी को समझ में आ जाय इसलिए ऐसी लीला करवा ली लीलाधर से।

कुछ लोग दक्षिण से भगवान राम की मूर्ति लेकर स्थापना करने के लिए श्रीअवध जा रहे थे। यमुना-तट पर उन्होंने विश्राम किया। उदय नाम के ब्राह्मण उस मूर्ति को देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने सोचा कि इस मूर्ति की स्थापना यहीं पर हो जाय। गोस्वामीजी से प्रार्थना की। दूसरे दिन जब भक्तों ने उस प्रतिमा को उठाकर ले जाना चाहा तब वह उठी ही नहीं। फिर उसकी स्थापना वहीं कर दी। गोस्वामीजी ने उनका नाम कौशल्यानंदन रख दिया। श्रीगोस्वामीजी के विद्या पढ़ने के समय के गुरुभाई नन्ददासजी कनौजिया यहीं मिले। उनके साथ भगवान का दर्शन एवं प्रसाद पाकर भक्तों को आनन्दित कर गोस्वामीजी ने चित्रकूट की यात्रा की।

चित्रकूट में सत्यकाम नाम के एक ब्राह्मण गोस्वामीजी के पास आये। उनकी इच्छा थी कि वे गोस्वामीजी से दीक्षा लें। गोस्वामीजी ने देखा कि अभी सत्यकाम के मन में काम-विकार है, इसलिए दीक्षा नहीं दी। सत्यकाम गोस्वामीजी के चरणों में गिर पड़े और उनके कृपापात्र हो गये। एक बड़ा दरिद्र ब्राह्मण दरिद्रता से व्यथित होकर मन्दाकिनी में डूबने जा रहा था, गोस्वामीजी ने पारसमणि प्रकट करके उसकी दरिद्रता नष्ट कर दी।

दिल्ली के बादशाह ने अपना आदमी भेजकर गोस्वामीजी को बुलवाया। जब गोस्वामीजी चित्रकूट से चलकर ओरछा होकर दिल्ली जाने लगे, तब ओरछे के पास रात में केशवदास प्रेत के रूप में मिले। गोस्वामीजी ने बिना प्रयास ही उनका उद्धार किया और वे विमान पर चढ़कर स्वर्ग गये।

चरवारी के ठाकुर की लड़की जो कि बहुत ही सुन्दर थी, उसका विवाह धोखे से एक स्त्री के साथ हो गया था। जिस स्त्री के साथ ठाकुर की लड़की का विवाह हुआ था उसकी माता ने संतान होते ही यह घोषणा कर दी थी : 'मुझे पुत्र हुआ है', परन्तु अब तो विवाह हो चुका था, लोग करते भी क्या ? जब गोस्वामीजी उधर से निकले तब लोगों ने उन्हें घेर लिया और प्रार्थना की : 'इस कन्या की रक्षा कीजिये।' गोस्वामीजी ने श्रीरामचरितमानस का नवाह्न पाठ किया और वह स्त्री से पुरुष हो गया। यह देखकर गोस्वामीजी का शरीर पुलकित हो गया और उनके मुँह से सहज ही 'जय जय सीताराम' निकल गया।

यहाँ से गोस्वामीजी दिल्ली पहुँचे। बादशाह ने दरबार में बुलाकर कहा : 'कोई चमत्कार दिखाओ।' गोस्वामीजी ने कहा : 'मुझे कोई चमत्कार मालूम नहीं।' बादशाह ने खीझकर उन्हें

कैद कर लिया। उनके जेल में जाते ही वानरों ने बड़ा उत्पात किया। महल में कोहराम मच गया। बादशाह को बड़ी चोट लगी, फिर तो तुरन्त गोस्वामीजी जेल से छोड़ दिये गये और बड़ी अनुनय-विनय करके उनसे अपराध क्षमा कराया गया। बादशाह ने बड़े सम्मान के साथ उन्हें विदा किया।

दिल्ली से चलकर अनेक प्राणियों का उद्धार करते हुए, लोगों को अपने धर्म में स्थिर करते हुए और भगवान की ओर बढ़ाते हुए वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ एक भक्त भजन गाया करते थे। उनके भजन में कुछ अशुद्धि थी, गोस्वामीजी ने उसे सुधारने को कहा। वे सुधार न सके, इससे उनके भजन में विघ्न पड़ गया। स्वप्न में गोस्वामीजी से भगवान ने कहा : 'तुम उसके भजन में शुद्ध-अशुद्ध का विचार मत करो। वह जैसे भजन करता है, वैसे ही करने दो।' गोस्वामीजी ने जाकर उससे कहा : 'तुम जैसे गाते थे, वैसे ही गाया करो।' गोस्वामीजी ने उनके मुख से भगवान की बाल-लीला सुनी। बड़ा आनन्द हुआ। गोस्वामीजी ने पीताम्बर देकर उनका सम्मान किया।

मुरारीदेव से भेंट करके मलूकदास के साथ गोस्वामीजी काशी आये। काशी में उन्होंने क्षेत्र-संन्यास ले लिया। शरीर वृद्ध हो गया था, फिर भी वे माघ महीने में सूर्योदय से पूर्व गंगा में खड़े होकर मंत्रजप किया करते थे। उनके रोएँ खड़े हो जाते, शरीर काँपने लगता परन्तु उन्हें इसकी तनिक भी परवाह न रहती। एक दिन गंगा-स्नान करके निकलते समय उनकी धोती के दो छींटे एक वेश्या पर पड़ गये। उसकी तो मनोदशा ही बदल गयी। वह बहुत देर तक उन्हें एकटक देखती रही, बाद में उसके मन में बड़ा खेद हुआ। उसकी आँखों के सामने नरक के अनेकों दृश्य आ गये। उसने सब बखेड़ों से पिण्ड छुड़ा लिया और धन्य हो गयी। अद्‌भुत उपासना-पद्धति है भारतीय संस्कृति की।

गंगापार हरिदत्त नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। वे बहुत ही दरिद्र थे। उन्होंने गोस्वामीजी से अपना दुःख निवेदन किया। गोस्वामीजी ने गंगा माता से प्रार्थना की। गंगा माता ने उसको बहुत-सी जमीन देकर उसकी दरिद्रता नष्ट कर दी। (क्रमशः)

प्राचीन सभ्यताओं में संस्कृत

भारतभूमि वह पावन वसुन्धरा है जिसकी स्वर्णिम गाथाओं से इतिहास के पृष्ठ समुज्ज्वल एवं परिपूर्ण हैं, जिसकी कलवाहिनी नदियाँ, हिमधवल पर्वतश्रेणियाँ, सुरम्य वनस्थलियाँ, विश्व का ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट करती हैं, जो ज्ञान-विज्ञान और विविध सभ्यताओं की जन्मदात्री है।

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीन धरोहर है। ऐसी धरोहर जो प्राचीन होते हुए भी नित-नूतन बनी रही। भारत की समस्त भाषायें संस्कृत से जीवन-रस प्राप्त करती हैं। संस्कृत से उनका संस्कार व परिष्कार होता है। भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओं का इतिहास बताता है कि उनका उद्‌गम संस्कृत से ही हुआ है। दुनिया की प्राचीन संस्कृतियाँ भारत की बौद्धिकता के प्रभाव में फलीं-फूलीं हैं। भारत के बाहर हमारे पड़ोसी देश वर्मा, श्रीलंका, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, इंडोनेशिया, लाओस सबकी भाषा संस्कृत से अनुप्राणित है और वे संस्कृत से ही अपनी-अपनी भाषा के पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करते रहते हैं। इन देशों के लोगों के नाम और वैज्ञानिक शब्द प्रायः संस्कृत के ही हैं। वे आज भी संस्कृत के प्रति आत्मीयता एवं आदरभाव रखते हैं। यहाँ तक कि इन भाषाओं की लिपियाँ भी भारतीय संस्कृत परम्परा से आयी हैं।

मध्य एशिया के क्षेत्रों में कभी संस्कृत तथा प्राकृत भाषा प्रचलित थी। चीनी तुर्किस्तान जो अब सियाग कहलाता है, वह भी संस्कृत का क्षेत्र रहा है। वहाँ कूचा, खोतान, काशगढ़ आदि नगरों में जो खोजें हुई उनमें संस्कृत के प्राचीन ग्रंथ बड़ी संख्या में मिले हैं। यूरोप के विद्वानों को अनेक देशों में संस्कृत ग्रंथों के प्रचलन

का पता चला । यूरोपीय विद्वानों ने सन् १७८० के आस-पास के दिनों में जब संस्कृत पढ़ी तो वे दंग रह गये कि 'संस्कृत' उनकी भाषाओं से मिलती है, यहाँ तक कि उन्हें अपनी भाषाओं के हजारों शब्दों का उद्गम संस्कृत से स्पष्ट होने लगा। उन्होंने स्वीकार किया कि यूरोप की भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं । उन्होंने पाया कि उनकी भाषाओं में भी संस्कृत की भाँति धातु, उपसर्ग एवं प्रत्यय हैं और प्रायः वे संस्कृत के ही समान हैं । अपनी भाषा के मूल को जानने के लिए कुछ यूरोपियन विद्वान भारत आये और संस्कृत का गहन अध्ययन किया।'

डच लोगों को इंडोनेशिया के अनेक द्वीपों में संस्कृत भाषा के प्राचीन शिलालेख प्राप्त हुए। उन्होंने देखा कि बाली द्वीप में संस्कृत के मंत्रों का प्रचलन भारत की भाँति ही है। फ्रांस के लोगों को तो कम्बोडिया में नौ हजार संस्कृत के शिलालेख प्राप्त हुए। जापान और चीन में संस्कृत की अति प्राचीन पांडुलिपियाँ सुरक्षित थीं। वहाँ के बौद्धविहारों में संस्कृत लिपि में मंत्र आदि लिखे जाते हैं।

आजका अन्वेषक मस्तिष्क भारतीय चिंतन-दर्शन की ओर इस आशा के साथ आकर्षित है कि इसके प्रकाश में तथाकथित आधुनिकता के भटकाव का अंत होगा और विश्व को संतुलित जीवन-दृष्टि मिलेगी । विश्वमानव अपनी आत्मरक्षा और अपने सुखद भविष्य की लंबी अवधि का प्रशस्त पथ यदि कहीं देख रहा है तो वह केवल भारतीय जीवन दर्शन ही है और संस्कृत भाषा भारतीय जीवन दर्शन का आधार है।

*

वशिष्ठजी बोले : ''रघुनन्दन ! शास्त्रवेत्ता कहते हैं कि मन का इच्छारहित होना यही समाधि है क्योंकि इच्छाओं का त्याग करने से मन को जैसी शांति मिलती है ऐसी शांति सैकड़ों उपदेशों से भी नहीं मिलती । इच्छा की उत्पत्ति से जैसा दुःख प्राप्त होता है ऐसा दुःख तो नर्क में भी नहीं । इच्छाओं की शांति से जैसा सुख होता है ऐसा सुख स्वर्ग तो क्या ब्रह्मलोक में भी नहीं होता।''

(आश्रम की 'पंचामृत' पुस्तक से)

एकादशी माहात्म्य

[कमला (परमा) एकादशी : १३ अक्टूबर २००१]

श्री अर्जुन बोले : ''हे जनार्दन ! आप अधिक मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम तथा उसके व्रत की विधि बतलाइये। इसमें किस देवता की पूजा की जाती है तथा इसके व्रत से क्या फल मिलता है ?''

श्री कृष्ण बोले : ''हे पार्थ ! इस एकादशी का नाम 'परमा' है। इसके व्रत से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा मनुष्य को इस लोक में सुख तथा परलोक में मुक्ति मिलती है। भगवान विष्णु की धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प आदि से पूजा करनी चाहिए। इस एकादशी की मनोहर कथा जो कि महर्षियों के साथ काम्पिल्य नगरी में हुई थी, कहता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो :

काम्पिल्य नगरी में सुमेधा नाम का अत्यंत धर्मात्मा ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्री अत्यन्त पवित्र तथा पतिव्रता थी। पूर्व के किसी पाप के कारण यह दम्पति अत्यन्त दरिद्र थे। उस ब्राह्मण की पत्नी अपने पति की सेवा करती रहती थी तथा अतिथि को अन्न देकर स्वयं भूखी रह जाती थी।

एक दिन सुमेधा अपनी पत्नी से बोला : 'हे प्रिये ! गृहस्थी धन के बिना नहीं चलती इसलिए मैं परदेश जाकर कुछ उद्योग करूँ।'

उसकी पत्नी बोली : 'हे प्राणनाथ ! पति अच्छा और बुरा जो कुछ भी कहे, पत्नी को वही करना चाहिए। मनुष्य को पूर्वजन्म के कर्मों का फल मिलता है। विधाता ने भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह टाले से भी नहीं टलता। हे प्राणनाथ ! आपको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं, जो भाग्य में होगा, वह यहीं मिल जाएगा।'

पत्नी की सलाह मानकर ब्राह्मण परदेश नहीं गया। एक समय कौण्डिन्य मुनि उस जगह आये। उन्हें देखकर सुमेधा और उसकी पत्नी ने उन्हें प्रणाम किया और बोले :

'आज हम धन्य हुए । आपके दर्शन से आज हमारा जीवन सफल हुआ ।' मुनि को उन्होंने आसन तथा भोजन दिया ।

भोजन के पश्चात् पतिव्रता बोली : 'हे मुनिवर ! मेरे भाग्य से आप आ गये हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अब मेरी दरिद्रता शीघ्र ही नष्ट होनेवाली है। आप हमारी दरिद्रता नष्ट करने के लिए उपाय बतायें।'

इस पर कौण्डिन्य मुनि बोले : 'मल मास की कृष्ण पक्ष की परमा एकादशी के व्रत से समस्त पाप, दुःख और दरिद्रता आदि नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य इस व्रत को करता है, वह धनवान हो जाता है। इस व्रत में कीर्तन-भजन आदि सहित रात्रि जागरण करना चाहिए। महादेवजी ने कुबेरजी को इसी व्रत के करने से धनाध्यक्ष बना दिया था। इसी व्रत के प्रभाव से सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र को पुत्र, स्त्री और राज्य प्राप्त हुआ था।'

फिर मुनि कौण्डिन्य ने उन्हें परमा एकादशी के व्रत की विधि कह सुनाई। मुनि बोले : 'हे ब्राह्मणी ! इस दिन प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर विधिपूर्वक पञ्चरात्रि व्रत आरम्भ करना चाहिए। जो मनुष्य पाँच दिन तक निर्जल व्रत करते हैं, वे अपने माता-पिता और स्त्रीसहित स्वर्गलोक को जाते हैं। हे ब्राह्मणी ! तुम अपने पति के साथ इसी व्रत को करो। इससे तुम्हें अवश्य ही सिद्धि और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होगी।'

कौण्डिन्य मुनि के कहे अनुसार उन्होंने परमा एकादशी का पाँच दिन तक व्रत किया। व्रत समाप्त होने पर ब्राह्मण की पत्नी ने एक राजकुमार को अपने यहाँ आते हुए देखा। राजकुमार ने ब्रह्माजी की प्रेरणा से उन्हें आजीविका के लिए एक गाँव और एक उत्तम घर जो कि सब वस्तुओं से परिपूर्ण था, रहने के लिए दिया। दोनों इस व्रत के प्रभाव से इस लोक में अनन्त सुख भोगकर अन्त में स्वर्ग लोक को गये।''

श्रीकृष्ण ने कहा : ''हे पार्थ ! जो मनुष्य परमा एकादशी का व्रत करता है, उसे समस्त तीर्थों व यज्ञों आदि का फल मिलता है। जिस प्रकार संसार में चार पैरवालों में गौ, देवताओं में इन्द्रराज श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार मासों में अधिक मास उत्तम है। इस महीने में पंचरात्रि अत्यन्त पुण्य देनेवाली है। इस महीने में पद्मिनी और परमा एकादशी भी श्रेष्ठ हैं। उनके व्रत से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्यमय लोकों की प्राप्ति होती है।

[पद्मपुराण से]

⁂ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ⁂

प्र. गुरुदेव ! शिविर में ध्यान के दौरान कई साधकों को कई प्रकार की क्रियाएँ होती हैं, इसका कारण बताने की कृपा करें।

उ. महापुरुषों की संप्रेक्षण शक्ति के द्वारा प्राणोत्थान होता है, फिर शक्ति जागृत होती है, फिर ध्यान करना नहीं पड़ता होने लगता है। अनन्त जन्मों के एवं इस जन्म के भी कुछ संस्कारों की परतें खुलने लगती हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं : ''योगी, तपस्वी, साधक प्रारंभ में टेढ़े-मेढ़े मार्ग से जाते हैं लेकिन जब यह राजमार्ग मिलता है तो परमपद को पाना आसान हो जाता है।''

जब कुण्डलिनी जागृत होती है तो जिसका चित्त दबा हुआ हो, अनुचित अनुशासन सहन किया हुआ हो, वैसे चित्त से दबाया हुआ रुदन, दबायी हुई शिकायतें प्रतिक्रियास्वरूप रुदन के रूप में बाहर निकलती हैं अथवा दबा हुआ विरह भी रुदन के रूप में बाहर निकलता है। जो दबे हुए संस्कार हैं वे रुदन के रूप में निकल जाते हैं तो भविष्य में हिस्टीरिया होने की संभावना नहीं रहती, मानसिक तनाव, पागलपन आदि की संभावना नहीं रहती।

कुण्डलिनी जागृत होने पर कई साधक हँसते हैं, कई नृत्य करते हैं, कई डोलते हैं... ये सब योग-क्रियाएँ हैं। कुण्डलिनी के जगने पर नाड़ी-शोधन होता है। ये कुण्डलिनी शक्ति तन-मन के विकारों के निर्मूलन के लिए, साधक के रोम-रोम की शुद्धि के लिए आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ आदि करवाती है।

टूने-फूने-टोटके आदि के साधकों में एवं कुण्डलिनी योग के साधकों में क्या अंतर है ? टूने-फूने-टोटके आदिवालों के पास जैसे-जैसे लोग सिर धुनते हैं वैसे-वैसे उनका आहार-विहार

अशुद्ध-अपवित्र होता जाता है और ज्यों-ज्यों कुण्डलिनी सक्रिय होती है त्यों-त्यों आहार-विहार पवित्र होता जाता है और मौन एवं एकांत की रुचि होती है। टूने-फूने वालों को तंबाकू, चाय, शराब, काम-विकार आदि की रुचि होती है, जबकि कुण्डलिनी के साधक को संसार के भोग और ऐश-आराम भी फीके लगते हैं।

मान लो, किसीकी नाभि के पास की नस-नाड़ियों का शोधन होता है तब ध्यान में उस महामाया कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा कूदने-फाँदने की क्रियाएँ होने लगती हैं। ऐसे में दस्त और उल्टी भी हो सकती है और विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकल जाते हैं। शरीर फूल जैसा हल्का हो जाता है।

मान लो, नेत्रों में कोई ऐसा विजातीय द्रव्य है जो तंदुरुस्ती के विरुद्ध है तो नेत्रों की क्रिया होने लगेगी और रुदन होने लगेगा। रुदन के आँसुओं द्वारा वे विजातीय द्रव्य बाहर निकल जायेंगे। यदि कोई ये द्रव्य निकालने बैठे तो न निकलेंगे, डॉक्टर ऑपरेशन करके भी न निकाल पायेंगे, लेकिन कुण्डलिनी के द्वारा वे सहज में ही निकल जायेंगे।

प्राणोत्थान की क्रिया जब तक मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर चक्र तक होती है, तब तक शरीर के नीचे के भाग के आसन होते हैं। अनाहत चक्र में कभी रुदन, कभी हास्य आदि क्रियाएँ होती हैं। जब विशुद्धाख्या चक्र पर कुण्डलिनी शक्ति कार्य करती है तब ध्यान के समय गर्दन ऊपर होने लगती है। जब आज्ञाचक्र का शोधन होता है तब देवी-देवता के दर्शन, गुरु के संकेत आदि मिलते हैं और जब कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में कार्य करती है तो जैसे कागज पर लोहे के बारीक कण रखो और उसके नीचे लौह-चुंबक घुमाओ तो लोहे के बारीक कण खड़े हो जाते हैं वैसी क्रियाएँ सहस्रार में होती हैं। शास्त्रों में वर्णित ये सारी क्रियाएँ हमको हुई थीं।

आइन्सटाईन का मस्तिष्क सामान्य मनुष्य की अपेक्षा ज्यादा विकसित था। इसलिए वह अणु विज्ञान की खोज कर सका। उसके दिमाग के सभी ज्ञानतंतु सक्रिय नहीं हुए थे फिर भी मनुष्य के मस्तिष्क को भी आश्चर्य हो जाय ऐसी खोजें उसने की। उसका मस्तिष्क लगभग १० से १२ प्रतिशत विकसित था और आम आदमी का मस्तिष्क लगभग २-३ प्रतिशत ही विकसित होता है और उससे अधिक प्रतिशत के विकसित मस्तिष्क के धनी भी होते हैं।

सुचारु रूप से जप-ध्यान आदि की सूक्ष्मतम-यात्रा करनेवालों के अनाहत और सहस्रार केन्द्र का विकास होता है। अष्टसिद्धियाँ और नौ निधियाँ हाजिर हो जाती हैं। ऐसे कई ऋद्धि-सिद्धि के धनी योगी हुए, जिनमें हनुमानजी, ज्ञानेश्वर महाराज आदि जन्मजात योग-सम्पन्न आत्माएँ थीं, फिर भी तत्त्वज्ञान के लिए, पूर्णता पाने के लिए, आत्मसाक्षात्कार के लिए उनसे भी ऊँची अवस्था में स्थित भगवान श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में हनुमानजी, निवृत्तिनाथजी के चरणों में ज्ञानेश्वरजी व ज्ञानेश्वरजी के चरणों में चांगदेवजी नतमस्तक हुए थे।

कुछ साधक सीधे तत्त्वज्ञान का मार्ग लेते हैं, तो कुछ ऋद्धि-सिद्धि के मार्ग से गुजरकर यात्रा करते हैं। बहुत सारे वहीं रुक जाते हैं लोकानुरंजन में।

'ज्ञानेश्वरी गीता' के छठे अध्याय में इस महान योग का वर्णन किया गया है। कुण्डलिनी जागरण होते ही साधक को आश्चर्यकारक अनुभव एवं क्रियाएँ होने लगती हैं। इसी आशय से भगवान श्रीरामचंद्रजी के गुरु वशिष्ठजी का वाल्मीकि रामायण में उल्लेख आता है। 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में भी काकभुशुण्डिजी व वशिष्ठजी के संवाद में प्राणकला की बात आती है। 'कुण्डलिनी योगोपनिषद्' में भी इसकी भारी महिमा आती है। यह योग अति प्राचीन, रसमय, सहज स्वाभाविक एवं सलामत योगमार्ग है। यदि कोई ईश्वर तक की यात्रा पूर्ण न भी कर पाये तो भी इस योग के पथिक की ऐसी क्षमता विकसित हो जाती है कि वह अनपढ़ होते हुए भी पढ़े हुओं को पढ़ा सकता है, निर्धन होते हुए भी धनवानों को धन व शांति का दान कर सकता है। कोई पद, कोई अधिकार न होते हुए भी बड़े-बड़े पद व अधिकारवाले उसके चरणों में मस्तक झुकाकर अपना भाग्य बना लेते हैं!

ऐसी महिमा है इस शरणागति योग की! आहार-विहार की शुद्धि और ध्यान में रुचि रखनेवाले का भी ध्यान-योग अपने-आप होने लगता है। विडंबना तो यह है कि ऐसी करुणा-कृपा

बरसानेवाले समर्थ सद्‌गुरुदेव होते हुए भी लोगों की रुचि नहीं है, यही कलियुग का प्रभाव है। लोगों की मति-गति नश्वर खिलौनों में, बाहर के चिंतन में ऐसी उलझ गयी है कि वे ऐसे संत के मिलने पर भी अपने भीतर के ताले खोलने में नहीं लग जाते।

जितना हेत हराम से, उतना हरि से होय।
कह कबीर वा दास का, पला न पकडे कोय॥

कबीर, मीरा, रामकृष्ण परमहंस व नरेन्द्र के जीवन में इसी कुण्डलिनी योग के प्रसाद की खबरें मिलती हैं। चाहे आप किसी भी क्षेत्र में हों, विवेकानंद की नाईं सन्यासी हों अथवा अपका जीवन मीरा या कबीर की नाईं हो, यह यात्रा करने के आप अधिकारी हैं। तत्परतापूर्वक लग जायें तो रुचि बनती जायेगी, प्रीति बढ़ती जायेगी और सहज रहस्य खुलते जायेंगे।

सहस्रार चक्र की साधना हो तो ज्ञान-तंतुओं के विकास का प्रतिशत बढ़ता जाता है। अनपढ़ व्यक्ति भी पढ़े हुओं को प्रभावित कर सकता है और उन्हें सुख के सागर की तरफ ले जा सकता है। ऐसी आभा वहाँ उत्पन्न होती है।

यह कुण्डलिनीयोग सिद्धयोग है, सहजयोग है। इसमें कई सिद्धियाँ आती हैं, कई चमत्कार होते हैं लेकिन उनमें फँसना नहीं चाहिए।

कुण्डलिनीयोग के द्वारा अंतःकरण शुद्ध होता है और शुद्ध अंतःकरण में ही परमात्मा को पाने की जिज्ञासा होती है। परमात्मा को पाने की जिज्ञासा जितनी तीव्र होती है, उतनी ही तीव्रता से साधक लक्ष्य तक पहुँच पाता है अर्थात् परमात्मा का ज्ञान पा सकता है और कुण्डलिनीयोग का यही वास्तविक लक्ष्य है।

***

[महा विलासी जीवन जीनेवाले सेठ चंदीराम ऐसे थे कि पत्नी हॉस्पिटल में भर्ती होती तो स्वयं भी उनके सान्निध्य के लिए भर्ती हो जाते थे। दो पत्नियों तो रवाना हो चुकी थी भगवान के पास।

बूढ़े सेठ चंदीराम ने पानी की तरह पैसे बहाये, तब जाकर एक गरीब माँ-बाप अपनी १८ वर्षीया कन्या का विवाह उनके साथ कराने को तैयार हो गये। सेठ चंदीराम विवाह-बंधन में बंधने से पहले आशीर्वाद लेने के लिए साँई लीलाशाहजी आश्रम (डीसा) में गये। वहाँ संतकृपा प्राप्त हुई, कुण्डलिनी योग की साधना का चस्का लगा।

चंदीरामजी पूज्य बापू के ध्यान-योग शिविर में आये, कृपा को पचाया, लग गये साधना में, कुछ महीनों में परिणाम का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। उनके गहरे मन का काम राम में, भोग योग में बदला।

आज उनकी उम्र के कुटुंबी, साथी व सहपाठी कुछ तो मौत के मुँह में जा पहुँचे हैं। कोई अगर जिन्दा भी है तो बिस्तर पर है। दूसरी तरफ चंदीराम सेठ ने इस कुण्डलिनी योग से नाड़ी-शुद्धि करके स्वास्थ्य-लाभ कर लिया है। वे बिना दवाइयों के अभी भी घूमते हैं। उनके रिश्तेदार महंत चंदीराम के नाम से आज भी उनके दर्शन करने आते हैं।

वे स्वयं कहते हैं : ''मैं बीमारियों का थैला था, टी.बी., दमा, खाँसी, एलर्जी और भी छोटी-मोटी बीमारियों का घर था, बिना छाते के धूप में ५ कदम चलना भी मुश्किल था, धूप नहीं सह सकता था। अब तो कई कि.मी. सुबह-शाम युवकों की तरह टहलने जाता हूँ। एकांत में साधना करता था तो शरीर से चंदन की खुशबू आती थी। कभी अपनी शौच में से भी चंदन की तेज-तर्रार सुगंध आती थी। मैं चकित हो जाता था! शौच में से चंदन की सुगन्ध आती थी, इस विषय में पूज्य बापूजी से पूछने पर बापूजी ने योग-ग्रन्थों का उदाहरण देते हुए कहा : 'ये अवस्थाएँ आती हैं और आगे बढ़ो।' कफ और मद से भरा शरीर अब फूल जैसा हल्का हो गया है।

विषय-विकारों में लिप्त ५५ वर्ष की उम्रवाला मेरे जैसा व्यक्ति कल्पना भी नहीं कर सकता कि ऐसा भी जीवन होता है, ऐसा भी नाड़ी-शोधन होता है! मैं धनभागी हूँ कि तीसरी शादी के निमित्त आशीर्वाद लेने के लिए डीसा के आश्रम में गया और वहाँ मुझे पूज्य बापूजी के दर्शन हुए, ध्यान में बैठने का अवसर मिला।''

ये सब ध्यान की गहराई और पूज्य बापूजी की कृपा को बिखेरने के बदले गहरा उतारने का अद्‌भुत फल है। निगाहमात्र से शक्तिपात का सामर्थ्य रखनेवाले सद्‌गुरु कभी-कभी धरती पर मिलते हैं। लेकिन ईश्वरप्राप्ति की प्यास न होने के कारण हम उनकी कृपा को पूरा विकसित नहीं करते अपितु मूर्खतावश बिखेर देते हैं। *- सम्पादक*]

हल्दी-आमी हल्दी

प्राचीन काल से ही भोजन में एवं घरेलू उपचार के रूप में हल्दी का प्रयोग होता रहा है। ताजी हल्दी का प्रयोग सलाद के रूप में भी किया जाता है। इसके अलावा आमी हल्दी का भी प्रयोग सलाद के रूप में करते हैं। उसका रंग सफेद एवं सुगंध आम के समान होती है। अनेक मांगलिक कार्यों में भी हल्दी का प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेद के मतानुसार हल्दी कशाय (कसैली), कड़वी, गरम, उष्णवीर्य, पचने में हल्की, शरीर के रंग को साफ करनेवाली, वात-पित्त-कफशामक, त्वचारोग-नाशक, रक्तवर्धक, रक्तशोधक, सूजन नष्ट करनेवाली, रुचिवर्धक, कृमिनाशक, पौष्टिक, गर्भाशय की शुद्धि करनेवाली एवं विषनाशक है। यह कोढ़, व्रण (घाव), आमदोष, प्रमेह, शोष, कर्णरोग, कृमि, पुरानी सर्दी, अरुचि आदि को मिटानेवाली है। यह यकृत को बलवान बनाती है एवं रस, रक्त आदि सब धातुओं पर प्रभावशाली काम करती है।

आयुर्वेद के मतानुसार आमी हल्दी कड़वी, तीखी, शीतवीर्य, पित्तनाशक, रुचिकारक, पाचन में हल्की, जठराग्निवर्धक, कफदोषनाशक एवं सर्दी-खाँसी, गर्मी की खाँसी, दमा, बुखार, सन्निपात ज्वर, मार-चोट के कारण होनेवाली पीड़ा तथा सूजन एवं मुखरोग में लाभदायक है। यूनानी मत के अनुसार आमी हल्दी मूत्र की रुकावट एवं पथरी का नाश करती है।

❊ औषधि प्रयोग ❊

१. सर्दी-खाँसी : हल्दी के टुकड़े को घी में सेंककर रात्रि को सोते समय मुँह में रखने से कफ, सर्दी और खाँसी में फायदा होता है। हल्दी के धुएँ का नस्य लेने से सर्दी और जुकाम में तुरंत आराम मिलता है। अदरक एवं ताजी हल्दी के एक-एक चम्मच रस में शहद मिलाकर सुबह-शाम लेने से कफदोष से उत्पन्न सर्दी-खाँसी में लाभ होता है। भोजन में मीठे, भारी एवं तले हुए पदार्थ लेना बंद कर दें।

२. टॉन्सिल्स (गलगण्ड) : हल्दी के चूर्ण को शहद में मिलाकर टॉन्सिल के ऊपर लगाने से लाभ होता है।

३. कोढ : गोमूत्र में तीन से पाँच ग्राम हल्दी मिलाकर पीने से कोढ़ में लाभ होता है।

४. प्रमेह (मूत्ररोग) : ताजी हल्दी एवं आँवले के दो-दो चम्मच रस में शहद डालकर पीने से प्रमेह में आराम मिलता है।

५. पीलिया : गाय के दूध की सौ ग्राम ताजी छाछ में पाँच ग्राम हल्दी डालकर सुबह-शाम लेने से पीलिया में लाभ होता है।

६. कृमि : ७० प्रतिशत बच्चों को कृमि रोग होता है, माता-पिता को पता नहीं होता। ताजी हल्दी का आधा से एक चम्मच रस प्रितिदिन पिलाने से बालकों के कृमिरोग दूर होते हैं। अंजीर रात को भिगो दें। सुबह खिला दें। इससे २-३ रोज में ही लाभ होता है।

[साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत।]

❦ च्यवनप्राश ❦

शरद पूनम के बाद आँवला वीर्यवान होता है। आनेवाले दिनों में वीर्यवान आँवलेवाला च्यवनप्राश साधकों को मिल पाये, इसलिए सुंदर व्यवस्था की जा रही है।

३० से भी अधिक औषधियों में आँवले को विधिवत् उबालकर, इसमें २४ औषधियाँ मिलाकर यह च्यवनप्राश बनाया जाता है। इस च्यवनप्राश की एक और विशेषता है कि इसमें उपसंजीवनी डाली जाती है। अतिबला औषधि के फायदों से वैद्य जगत सुपरिचित है, वह भी इसमें डाली जाती है।

जो कमाने की दृष्टि से च्यवनप्राश बनाते हैं उसमें और इस च्यवनप्राश में बहुत अन्तर है। साधकों को इससे बहुत लाभ हुए हैं। पूज्य बापूजी भी इसका नित्य सेवन करते हैं इसके फलस्वरूप इस उम्र में भी सिर में नये काले बाल आ रहे हैं। अगर पूज्य बापू को इसका विधिवत् सेवन करने का समय मिले तो इस च्यवनप्राश से और भी चमत्कारिक लाभ हो सकता है। कोई योग वेदान्त सेवा समिति अपने इलाके में ही च्यवनप्राश बनाकर नफे की भावना बिना सेवा करना चाहें और सारी औषधियाँ डालने की शर्त कबूल करें तो उन्हें साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र (सूरत) से औषधि एवं वैद्यों का सहयोग मिलेगा।

संपादक महोदय 'ऋषि प्रसाद'

समाज एवं संस्कृति की रक्षा के लिए आप अलग-अलग माध्यमों के द्वारा महायज्ञ कर रहे हैं। आपके द्वारा प्रकाशित 'ऋषि प्रसाद' सचमुच में प्रसाद बनकर हमारे मन की रिक्तता (वेक्यूम) को भर देने में रामबाण सिद्ध हो रहा है। उसमें दी गयी आपकी विचाररूपी किरणें हमारे मन को शुद्ध करके हमारे दिमाग के लिए ऐसे विटामिन की पूर्ति करती हैं, जिस विटामिन का निर्माण करने की ताकत दुनिया की किसी भी फार्मेसी (कंपनी) के पास नहीं है।

• पूज्य बापूजी के दर्शन की उत्कट अभिलाषा के साथ श्रीचरणों में वंदन।

प्रो. राजकुमार साधुराम टोपणदासानी
विभागाध्यक्ष (कॉमर्स) आर्ट्स एवं कॉमर्स कॉलेज
मेंदरडा, जूनागढ़ (गुज.)

*

संपादक महोदय 'ऋषि प्रसाद'

पहले मेरा जीवन बड़ा व्यसनी था। शराब-मांस आदि का सेवन करता था लेकिन अप्रैल २००० से 'ऋषि प्रसाद' की पत्रिका हाथ लगी और इस पत्रिका ने मेरा जीवन ही बदल दिया। अब मैंने शराब-मांस लेना तो बंद कर ही दिया है लेकिन चाय पीना भी बंद कर दिया है।

यह सब बापूजी की कृपा का ही फल है। अब केवल एक ही प्रार्थना है कि गुरुदीक्षा मिल जाय।

लोकोद्धारक बापूजी के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम !

ओम प्रकाश
रैंक कॉन्सटेबल, प्लाटून-डी,
यूनिट 123BNBSFC/O56APO
बाचीपुर, श्रीनगर(जम्मू)

गुरुकृपा से तीन संतान

२ अगस्त १९९९ को मेरी पत्नी की तबीयत अचानक बिगड़ गयी। उसके हाथ-पैर ठंडे हो गये, मुट्ठी बंद हो गयी, शरीर एकदम पीला हो गया और थोड़ी देर बाद रक्तस्राव होने लगा। १५ अगस्त तक कुछ भी सुधार न होने पर डॉक्टरों ने कहा : ''केस बिगड़ चुका है। करीब १० सप्ताह का गर्भ है और तीन बच्चों की संभावना है। गर्भपात करवाना पड़ेगा अन्यथा तुम्हारी पत्नी की जान को खतरा है।''

कुछ डॉक्टरों ने कहा : ''दो गर्भ हैं जिनमें एक ठीक है और दूसरा बिना जीव के मांस की लोथ है।'' तीसरी बार सोनोग्राफी करवायी तो डॉक्टरों ने कहा : ''तीन बच्चों का गर्भ है मगर एक बच्चे की धड़कन बहुत कम है।''

हमने गर्भपात के लिए मना कर दिया। घर आकर पत्नी को आश्रम के बड़ बादशाह की मिट्टी व जल का सेवन करने के लिए दिया। तब कुछ लाभ हुआ।

बाद में हम सूरत आश्रम गये जहाँ दिनांक : ३ सितम्बर १९९९ को पूज्य बापू से हमारी मुलाकात हुई। समस्या बताने पर पूज्यबापू ने मेरी धर्मपत्नी को कहा : **''बेटी ! ऑपरेशन की जरूरत नहीं पड़ेगी। डॉक्टर लोग पैसे के चक्कर में ऐसा करते हैं। तुम घबराओ मत। श्रद्धा-विश्वास के साथ जप करो। कोई परेशानी नहीं होगी। सब ठीक हो जायेगा।''**

घर आकर हमने 'श्रीआसारामायण' का पाठ तीनों समय करना चालू किया और बापूजी से हम यही प्रार्थना करते रहे कि आपकी जैसी मर्जी।

दिनांक ३० जनवरी २००० को यशवंत हॉस्पिटल (ओझर) में उसे भर्ती किया गया। रात्रि

दो बजे डॉक्टरों ने ऑपरेशन के लिए कहा लेकिन हमने मना कर दिया। डॉक्टरों ने कहा : ''दो बच्चे उलटे और तीसरा आड़ा है। बिना ऑपरेशन के प्रसूति नहीं होगी।'' मैंने दूसरे दिन सुबह ९ बजे पूज्यश्री के निर्देशानुसार उसे गाय के गोबर का रस, तुलसी एवं बड बादशाह का जल पिलाया। थोड़ी देर बाद १०:०१, १०:१०, १०:१३ पर तीनों बच्चों का जन्म बिना ऑपरेशन के हो गया।

डॉक्टरों ने कहा : ''तीसरे नम्बर के बच्चे की साँस नहीं चल रही है। इसे काँच की पेटी और ऑक्सीजन पर रखना पड़ेगा लेकिन हमारे पास व्यवस्था नहीं है। अतः इसे नासिक या पिपलगाँव ट्रांसफर करना पड़ेगा।''

लेकिन मैं उनकी बातों में नहीं आया। मैं सीधा घर आया और दोपहर ३ बजे तक बापूजी के सामने बैठा रहा। पूज्य बापू के पावन चरणकमलों का जल तीनों बच्चों को पिलाया। गुरुदेव ने प्रेरणा दी : 'बच्चे ठीक हैं।'

डॉक्टर बोले : ''लापरवाही मत करो। जल्दी करो।''

मैंने कहा : ''डॉक्टर साहब ! एक बार चेक कर लो।''

उसी समय एक बाल-विशेषज्ञ महिला डॉक्टर आयीं और सीधे बच्चों के पास गयीं। बच्चों की जाँच करके उन्होंने कहा : ''तीनों बच्चे बिल्कुल ठीक हैं।''

महिला डॉक्टर के चले जाने के बाद हॉस्पिटल के डॉक्टरों ने पूछा : ''उस महिला डॉक्टर को किसने बुलाया था ? हमारे हॉस्पिटल में वह कैसे आयी ? क्या तुमने बुलाया था ? वह यहाँ किसलिए आयी थी ?''

मैंने कहा : ''डॉक्टर साहब ! मुझे तो यह भी पता नहीं कि वह डॉक्टर थीं।''

तीसरे दिन अस्पताल से मेरी पत्नी व तीनों बच्चे सही-सलामत घर लौटे।

डॉक्टरों की पूरी टीम ने स्वीकार किया :

''इस केस में कोई दैवी चमत्कार हुआ है।''

इतना सुनकर मैं कुछ नहीं कह पाया। बस, दो बूँद आँसू आँखों से बह चले मेरे प्यारे सद्गुरुदेव की याद में।

- सुभाष बालियान
ओझर, नासिक (महा.).

* संस्था समाचार *

एक सत्र नौनिहालों के नाम

नागौर, जोधपुर, बरेली, मुरादाबाद में पूज्यश्री के सत्संग-प्रवचन में एक सत्र विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से आयोजित किया गया। स्थानीय विद्यालयों से बड़ी संख्या में आये छात्र-छात्राओं, अभिभावकों एवं शिक्षक बंधुओं ने मार्गदर्शन प्राप्त किया।

पूज्यश्री ने उक्त सभी स्थानों में देश के भावी कर्णधारों को तेजस्वी-ओजस्वी बनाने की विभिन्न युक्तियों से सुसज्ज किया, अनेक यौगिक प्रयोग सिखाये। विद्यार्थियों में एक सबसे बड़ी कमजोरी होती है याददाश्त की कमी। इससे मुक्ति पाने के अनेकों उपाय पूज्य गुरुदेव ने बताये। इसमें निर्भयता, संयम एवं वीरता जैसे सद्गुण विकसित करने पर भी जोर दिया गया। भावी पीढ़ी को स्वधर्मपरायण व उत्तम संस्कारों से सुसज्ज बनाने के लिए पूज्यश्री कृतसंकल्प हैं। विद्यार्थियों में 'युवाधन सुरक्षा' पुस्तक निःशुल्क बाँटी गयी।

पुष्कर (राज.) : ३१ अगस्त से २ सितम्बर। ब्रह्माजी की यज्ञस्थली तीर्थभूमि पुष्कर में ध्यान-योग साधना शिविर एवं पूनम दर्शन महोत्सव संपन्न हुआ। सुना था कि निष्काम व निःस्वार्थ दैवीकार्य करनेवाले मनुष्य को पग-पग पर देवगण मदद रूप होते हैं, ऐसे दैवीकार्यों में वे स्वयं सहभागी होते हैं। यहाँ शक्तिपात साधना शिविर के पहले दिन ही इन्द्रदेव ने रिमझिम बारिश की फुहार की। मेघराजा इस ढंग से बरसे कि किसीको विघ्न भी न हुआ और उड़ती हुई धूल भी बैठ गयी। पूज्यश्री ने ध्यान-योग शिविर में ध्यान-उपासना व जीवन विकास के अनेक यौगिक प्रयोग बताये।

दिनांक ३ से ५ सितम्बर तक यहाँ विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर भी संपन्न हुआ। राजस्थान व अन्य राज्यों से बड़ी संख्या में आये छात्र-छात्राओं ने पूज्यश्री से प्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त किया।

मेड़ता सिटी : ८ सितम्बर। पुष्कर-नागौर मार्ग पर स्थित मेड़ता शहर में पूज्यश्री ने ८ सितम्बर की शाम को सत्संग-प्रवचन दिया। बापूजी नागौर के लिए प्रस्थान करने-ही वाले थे कि एकाएक ४ घंटे

पहले समिति पूज्य बापूजी को रिझाने-मनाने में सफल हो गयी। कुछ ही समय में व्यवस्था कर ली गयी। बापूजी का नाम सुनते ही हजारों-हजारों लोग मेड़ता में एकत्रित हो गये। वहाँ के लोगों के लिए यह ऐतिहासिक कार्यक्रम हो गया। कैसे रहे होंगे मेड़ता के प्यारे सत्संग-प्रेमी ? ना कोई पूर्व सूचना, ना पोस्टर, ना पैम्पलेट, ना अखबार, बस माइक घूमा और मेड़ता के भक्त इस औलिया के निकट से दर्शन-सत्संग का अमृत पीने को उमड़े।

भक्तों के विशाल जनसमूह से विशाल मंडप भी छोटा पड़ा और विशाल मैदान भी नन्हा पड़ गया। **'भक्त समुदाय उमड़ा, वैकुण्ठ नन्हा।'**

नागौर : ९ से ११ सितम्बर। राजस्थान की इस भूमि पर पूज्यश्री का पदार्पण पहली बार हुआ। दूरदर्शन, चैनलों व विभिन्न प्रचार माध्यमों से पूज्य बापू का दर्शन-सत्संग पाये हुए भक्तजन प्रत्यक्ष दर्शन-सत्संग के पिपासु थे। ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापू को अपने बीच पाकर वे गद्‌गद हो गये।

जोधपुर (राज.) : १२ से १६ सितम्बर तक आध्यात्मिक गंगा का प्रवाह-केन्द्र बना जोधपुर नगर। जिस प्रकार मरुभूमि के ताप से तप्त पथिक तरुवर की छाया में असीम शांति का अनुभव करता है उसी प्रकार संसाररूपी मरुभूमि में त्रिविध ताप से तप्त असंख्य लोगों ने पूज्यश्री की पीयूषवाणी से असीम शांति का अनुभव किया। पूज्यश्री ने सूर्यनगरी जोधपुर में अन्तर तिमिर मिटाने की अनेकों कुंजियाँ सत्संगियों को बतायी। यहाँ उमड़े जनसैलाब के विषय में कहना पड़ेगा :

धन्य हुई यह धरा, मधुर हो गयी बेला।
सूर्यनगरी में सजा रहा, महाकुंभ का मेला॥

'सिंधी वैलफेयर एवं मेडिकल सोसायटी' द्वारा चौपासनी हाउसिंग बोर्ड में प्रस्तावित सामुदायिक भवन एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का शिलान्यास १५ सितम्बर को पूज्यश्री के करकमलों द्वारा हुआ।

सिंधी भाई इस सामाजिक कार्य में बड़े उत्साह के साथ जुटे थे। इस औलिया के हाथ से करीब तीन करोड़ के दैवी कार्य का यह शिलान्यास समारोह पूरे जोधपुर में तो क्या, संपूर्ण राजस्थान में अभूतपूर्व प्रतीत हो रहा था। आम शिलान्यासों में २५-५० अथवा २००-५०० लोग भी मुश्किल से लाये जाते हैं लेकिन यह शिलान्यास लोकसंत के करकमलों द्वारा हुआ, इसलिए सिंधी समाज एवं अन्य तमाम समाजों के भक्तों का उभरना स्वाभाविक ही था। शिलान्यास कार्यक्रम में सत्संग के सुन्दर संस्कारों से सिंचित हुई वह भूमि और वातावरण... धनभागी हैं वे सिंधी समाज के कार्यकर्ता जो शिलान्यास कार्यक्रम के बहाने लोकमंगल करने एवं उस भूमि और अड़ोस-पड़ोस में पवित्र वातावरण बनाने में सहभागी बने।

बरेली (उ. प्र.) : २१ से २४ सितम्बर। चार दिवसीय गीता भागवत सत्संग-प्रवचन में अभूतपूर्व रूप से बरेली की धर्मप्रेमी एवं सत्संगी जनता उमड़ पड़ी। लम्बी प्रतीक्षा एवं श्रद्धालुओं के अथक प्रयासों से प्राप्त इस सत्संग-कार्यक्रम में स्थानीय भक्तों ने खूब उत्साह से भाग लिया।

पूज्यश्री ने ज्ञान, भक्ति व योग की गंगा बहाकर भक्तों के जीवन में आनंद एवं उल्हास का संचार कर दिया। स्वस्थ, सुखी एवं सम्मानित जीवन जीने की अनेक कुंजियाँ पूज्यश्री ने बतायी।

मुरादाबाद (उ.प्र.) : २५ से २७ सितम्बर। त्रिदिवसीय गीता-भागवत सत्संग समारोह बड़ी विशाल जनमेदनी के बीच सम्पन्न हुआ। पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग की मुरादाबाद वासियों की मुरादें पूर्ण हुईं। पूज्य बापू ने शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक तनावों से मुक्ति पाने के उपाय बताये। मानव जीवन में पुरुषार्थ की मुख्यता बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''प्रारब्ध कोई हव्वा का नाम नहीं है। मनुष्य का पुरुषार्थ ही प्रारब्ध बनाता है और पूर्वकाल के हीन कर्मों से बने दुःखद प्रारब्ध को भी अभी के श्रेष्ठ पुरुषार्थ और श्रेष्ठ सूझ-बूझ से सुखद बनाया जा सकता है। मनुष्य अपने भाग्य का आप विधाता है। संयम, पुरुषार्थ एवं साधन का अवलम्बन लेकर ऊँचा लक्ष्य बनायें।''

सभी को प्रेरणा देते हुए लोक हितैषी साँईं ने सबको पक्का कराया :

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल।
सफलता तेरे चरण चूमेगी, आज नहीं तो कल॥

१७ और १८ सितम्बर को हल्द्वानी एवं १९ और २० सितम्बर को रुद्रपुर में श्री सुरेशानंदजी के सत्संग-प्रवचन संपन्न हुए।